परमार्थ भजनावली

एवं

प्रश्नोत्तरी

श्री भगवान ट्रस्ट कमेटी (रजिस्टर्ड)
श्री भगवान भवन,
रेलवे रोड, हृषीकेश।

शुद्धि-पत्र परमार्थ भजनावली

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	विध्न	विघन
२७	११	आरोसतगुर	आए मेरे सतगुरु
२८	४	पाया	पाए
२८	८	घूम घूम	घूम घूम कर
३६	१८	घबढ़ाया	घबराया
३७	२	खेकर	खेवट
३७	३	अरजी	अर्जी
३७	१३	ब कर्मा, तिरत	बहु कर्मा, निरत
३८	१५	शुद्ध	शुद्ध
४०	१२	बन्दना	परणाम
४०	१३	"	"
५६	१४	का	के
५६	१२	क	के
६७	१४	टक	टेक
७३	६	हैं	है
७५	११	भांई	माई
७७	६	६१	७७
६५	२	धारो	धार
६५	३	कलपित	कल्पित
८३	१८	हम	यह
६८	४	उपासन	उपासना
११०	३	तौ हूँ	तो भी
१३०	१३	ले	से
१३२	६	रोख	रोक
१३२	१६	विचैप	विद्मेप

ॐ

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुराण उदधि घन साधू॥

परमार्थ भजनावली

जिसको

परम पूज्य श्री १०८ स्वामी भगवानसिंह जी महाराज

के शिष्य

महात्मा चेतनहरि जी

ने

संगत के आग्रह तथा श्री १०८ स्वामी जी महाराज की

आज्ञा से

अधिकारियों के लाभार्थ संग्रह किया

पांचवीं वार

५०००

सं० २०२७ वि०

मूल्य ४) 2)

डाक व्यय पृथक्

प्रकाशक:—

श्री १०८ स्वामी गोविन्द हरि महाराज

श्री भगवान भवन, हृषीकेश, जिला-देहरादून (यू०पी०)।

प्रथम वार	हृषीकेश	२०००	२०१६ वि०
द्वितीय वार	कलकत्ता	२०००	२०१६ वि०
तृतीय वार	हृषीकेश	२०००	२०२१ वि०
चतुर्थ वार	हृषीकेश	२०००	२०२४ वि०
पांचवीं वार	हृषीकेश	५०००	२०२७ वि०

❀ पुस्तक मिलने का पता ❀

१—श्री भगवान भवन रेलवे रोड,
हृषीकेश, जिला देहरादून (यू० पी०)

२—श्री सुखराम हरदेव दास जी,
भागलपुर सिटी (बिहार)।

३—श्री नन्दलाल गोपी कृष्ण जी बागला,
मारवाड़ी टोला, अपर बाजार, राँची (बिहार)।

४—श्री तोलाराम गिरधारीलाल जी,
बड़ा बाजार; पो० दरभंगा, (बिहार)।

५—श्री बनारसीलाल जी राजगढ़िया,
(नामोपारा) पो० पुरुलिया, (वैस्ट बंगाल)।

६—श्रीमती भगवतीबाई जी,
महिला सतसंग भवन, मुक्तपुर चौक,
गीरीडीह जि० हजारी बाग (बिहार)

मुद्रक—श्री नारायण प्रेस, हृषीकेश, जिला देहरादून।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ संस्करण की सब प्रतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। अब संगत के आग्रह तथा परमपूज्य श्री १०८ श्री सद्गुरु देव जीं महाराज की आज्ञानुसार इसका पंचम संस्करण हृषीकेश में छपवाया गया है। इसमें कुछ सन्त महात्माओं के अनुभव तथा पूज्य-पाद श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज द्वारा कृपा किया हुआ 'एक संत और शिष्य का सम्वाद' तथा संगत द्वारा प्रदान किये हुए कुछ लाभदायक भजन यथापूर्व हैं। अब की बार 'तीनों शरीरों का विवेक' भी जिज्ञासुओं के लाभार्थं इसमें बढ़ा दिया गया है। आशा है कि जो कोई त्रुटियां टूट-फूट व मात्रा आदि की छपते समय रह गई हों उनको पाठक कृपया सुधार लेंगे और इसमें जो सम्मिलित भाषाओं के शब्द हैं उनमें दोष दृष्टि न रखते हुए सारग्राही दृष्टि से अपने कल्याणार्थं इसका पाठ करेंगे।

इसके छपते समय श्रीं नारायण प्रेस ने प्रेम के साथ छपाई आदि की सेवा की है। वह धन्यवाद के पात्र हैं। ईश्वर उनका प्रेम व उत्साह इसी प्रकार बनाये रक्खे और उनका सर्वदा कल्याण हो। —चेतनहरि

आरती

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे ॥
भक्त जनों के संकट छिन में दूर करे ॥ ॐ० ॥
जो ध्यावै फल पावै, दुःख बिनसे मन का ॥ प्रभु० ॥
सुख सम्पत्ति घर आवै, कष्ट मिटे तन का ॥ ॐ० ॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी ॥ प्रभु० ॥
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ॥ ॐ० ॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी ॥ प्रभु० ॥
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥ ॐ० ॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता ॥ प्रभु० ॥
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥ ॐ० ॥
तुम हो एक अगोचर सब के प्राण पति ॥ प्रभु० ॥
किस विधि मिलूं दयामय ! तुमको मैं कुमती॥ ॐ० ॥
दीन बन्धु दुःख हर्ता, तुम ठाकुर मेरे ॥ प्रभु० ॥
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥ ॐ० ॥
विषय विकार मिटावो, पाप हरो देवा ॥ प्रभु० ॥
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥ ॐ० ॥

॥ ॐ सत् गुरु प्रसाद ॥ ॐ ॥ श्री परमात्मने नमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगन सदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम्
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभा-
त्पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्दनेत्रा-
त्कृष्णात्परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥

१. मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपातमहं वंदे परमानन्द माधवम् ।।

२. ब्रह्मानन्दं परं सुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

३. चैतन्यं शाश्वतं शांतं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नाद बिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुर्वे नमः ।।
सर्व श्रुति शिरोरत्न विराजित पदाम्बुजम् ।
वेदान्ताम्बुज मार्तण्डं तस्मै श्री गुर्वे नमः ।।

४. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरु साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्री गुर्वे नमः ।।

५. अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुर्वे नमः ।।

६. ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम् ।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरुः कृपा ।।

७. अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुर्वे नमः ।।

८. अखण्डानन्द बोधाय शिष्य संताप हारिणे ।
सच्चिदानन्द रूपाय रामाय गुर्वे नमः ।।

अज्ञान मूल हरणं जन्म कर्म निवारणम् ।
ज्ञान वैराग्य सिध्यर्थं गुरु पादोदकं पिवेत् ॥

९. ब्रह्म प्रणाम प्रणाम गुरु, पुनि प्रणाम सब संत ।
करत मंगलाचारु शुभ, नाशत विघ्न अनन्त ॥
ज्ञान अंजन गुरु दिया, अज्ञान अंधेर विनाश ।
हरि कृपाते संत भेटिया, नानक मन परगास ॥
ज्ञान शलाका दे बुद्धि लोचन ।
करहि तम अज्ञान विमोचन ॥
निरावरण दृग करहि जो श्रीगुरु
नमो नमो तिहिं चरण धारि उर ॥

१०. गुरुदेव माता गुरुदेव पिता, गुरुदेव स्वामी परमेसरा ।
गुरुदेव सखा अज्ञान भंजन, गुरुदेव बंधिप सहोदरा ॥
गुरुदेव दाता हरिनाम उपदेसै, गुरुदेव मंत्र निरोधरा ।
गुरुदेव सांति सत बुद्धि मूरत, गुरुदेव पारस परसपरा ॥
गुरुदेव तीरथ अमृत सरोवर, गुरुज्ञानमज्ञन अपरम्परा ।
गुरुदेव कर्त्ता सभ पाप हरता, गुरुदेव पतित पवित करा ॥
गुरुदेव आदि जुगादि जुगजुग, गुरुदेव मंत्र हरि जपउधरा ।
गुरुदेव संगत प्रभु मेल कर किरपा,
हम मूढ़ पापी जित लग तरा ॥
गुरुदेव सतगुरु पारब्रह्म परमेसर,
गुरुदेव नानक हरि नमसकरा ॥

११. प्रथम गुरू को ध्याइये, जिन्ह दीन्हा उपदेश।
जगत जाल से काट के, मेटे सर्व कल्लेश॥
नमो नमो गुरुदेव जी, बारम्बार प्रणाम।
गर्व निवारयो जीव को, दियो परम सुखधाम॥
या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये पर जो मिलें, तो भी सस्ते जान॥
अभय दान गुरु दीजिये, गुरु देवन के देव।
और कछु नहिं चाहिये, निशदिन आपकी सेव॥
अगम अथाह गुरू गम किया, मुझको दिया दिखाय।
कोटि जनम का रास्ता, छिन में दिये पहुँचाय॥
हरिहर आदिक जगत में, पूज्य देव जो कोय।
सतगुरु की पूजा किये, सबकी पूजा होय॥
मैं अभिमानी मंदमति, नहिं जानूं तव भेव।
आदि सनातन ब्रह्म हैं, गुरु देवन के देव॥
गुरु को मानुष मानते, ते नर कहिये अंध।
यहां दुःखी संसार में, आगे यम के फंद॥
वे नर अंध कहावहीं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु शरण है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥

गुरु मूर्त्ति हृदय धरूँ, होत बुद्धि परकास।
डावी ढांकी ना रहै, कस्तूरी की वास ॥
गुरु मूरति चंद्र चकोर है, चित चरणन की ओर।
आठ पहर निरखत रहूँ, गुरु मूरति की ओर ॥
नमो नमो गुरु देव जी, तुम चरणन बहु बार।
भव सागर से तार कर, करदो बेड़ा पार ॥
पहिले हुए जो संत जन, अब भी आगे होहिं।
सबके चरण प्रणाम मम, भक्ति दान दो मोहिं ॥
संत चरण सेवा करो, जो चाहो फल चारि।
निष्कामी होय पूजिये, गुरु चरणन चित धारि ॥
चंदन तरु श्रीराम हैं, संत पवन पहचान।
ज्ञान सुगंध बसाय के, करले आप समान ॥
गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिन भगति न होय।
गुरु बिन संशय ना मिटें, गुरु बिन मुक्ति न होय ॥
राम सबन में रम रह्यो, गुरु बिन भेद न पाय।
जो सतगुरु किरपा करें, तुरत राम मिल जाय ॥
गुरु किरपा तब जानिये, फीके लागें भोग।
जितने जग के भोग हैं, सब ही दीखें रोग ॥
विषयन विषसम जान के, तज विषयन की आस।
सुमिरण कर श्री राम का, दुःख न आवें पास ॥

सुमिरण सोई जानिये, सुरति शबद मिल जाय।
सुरति शबद में जब मिले, मलिन-अहं नस जाय ॥
मलिन अहं जबही नसे, गुरु चरणन चित लाय।
गुरु चरणन चित जब लगे, सहज मुक्त होइ जाय ॥

॥ आरती श्री गुरुदेव जी की ॥

ॐ जय गुरुदेव हरे, स्वामी जय गुरुदेव हरे ॥टेक॥
पूरण ब्रह्म अजन्मा, नित सुख वेद ररे ॥ॐ जय० ॥
शीतल शान्त सदा इकरस, मन वाणी से परे, स्वामी०।
किरपा कर वर दीजै, द्वितीया भाव जरे ॥ ॐ जय० ॥
सबके प्रेरक सबके भीतर, सर्व रूप सदा, स्वामी०।
नेति नेति श्रुति गावत, पावत नहिं भेदा ॥ ॐ जय० ॥
तुम्हरो ध्यान धरत नित, ब्रह्मा विष्णु हरे, स्वामी०।
सहंसर नाम उचारत, उपमा शेष करे ॥ ॐ जय० ॥
पूजा पूजक पूज्य, रूप सब आप धारे, स्वामी०।
तुम हो सब में व्यापक, सबसे हो न्यारे ॥ ॐ जय० ॥
जो उपकार तुम्हारे, हमसे जाय न वरे, स्वामी०।
तपत तेल से निकारयों, ऐसी कृपा करे ॥ ॐ जय० ॥
सब ज्योतिन की ज्योति, सूर्य चन्द्र तारे, स्वामी०।
लै परकाश तुम्हारा, सत्र परकाश करें ॥ ॐ जय० ॥

की कुछ भेंट तुम्हारी, मिल कर दास करें, स्वामी० ।
तुम्हरी भेंटा तुम्हरे माहीं, हमसे कछु न सरे ॥ ॐ जय०॥
दासनदास थारी आरति, चरणों के बीच करें, स्वामी० ।
किरपा दृष्टि निहारो, सिर पर हाथ धरें ॥ ॐ जय० ॥

॥ स्तुति ॥

सतगुरु पूरण ब्रह्म हैं, पूरण गुरु अवतार ।
जावां सतगुरु ऊपरों, बार बार बलिहार ॥१॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दीनों के सिरताज ।
शरण तुम्हारी आयऊ, राखो सतगुरु लाज ॥२॥
सतगुरु महिमा बहुत है, गावत वेद पुरान ।
मुख छोटा प्रभुता बड़ी, किस विधि करूँ बयान ॥३॥
कलम न उपमा लिख सके, वाणी कहे न सार ।
शेष सरस्वती शारदा, पावे न जाका पार ॥४॥
सब धरती कागज़ करूँ, कलम करूँ वनराय ।
सब सिन्धू स्याही करूँ, उपमा लिखी न जाय ॥५॥
धन धन राजा जनक है, सिमरन किया विवेक ।
एक घड़ी के सिमरने, पापी तरे अनेक ॥६॥
ऐसा सिमरण जानके, संतां पकड़ी टेक ।
नानक सिमरण सार है, बिसरो घड़ी न एक ॥७॥

ब्रह्म विद्या है ब्रह्मवल्ली, ब्रह्म विद्या है सार।
बिना सतगुरु की कृपा, होय न तत्त्व विचार ॥८॥
सतगुरु ही लुटावंदे, हीरे मोती लाल।
मूरख मन तू ग्रहण कर, सतगुरु संदे लाल ॥९॥
आतम रूपी लाल से, बिछुरत भयो अनाथ।
फिर पीछे पछतायगा, फेर न आवे हाथ ॥१०॥
पांच चोर लूटें तुझे, लूटें दिन अरु रात।
बिनु सतगुरां न छूटसें, चौरासी के गात ॥११॥
मन तू शाहनशाह हैं, बन बैठो कंगाल।
श्री सतगुरु की शरण में, अपना आप सम्हाल ॥१२॥
मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
दसों इन्द्रिय देहुरा, इसमें जोत पिछान ॥१३॥

ईश्वर प्रार्थना

सुखसिन्धु भगवन दीनबन्धु ऐसी करुणा कीजिये।
हों सभी सन्मार्गगामी ऐसी शक्ति दीजिये ॥१॥
त्याग कर निज स्वार्थ को परमार्थी सब ही बनें।
करें सत्य का पालन हमेशा अब सतोगुण दीजिये ॥२॥
छूट जावें दुःख सारे सुख सदा पावें सभी।
बलवान, बुद्धिमान और विद्वान हमको कीजिये ॥३॥

यज्ञ निशि दिन हो यहां आदेश पालन आपका।
घोर इस कलिकाल को सतयुग में परिणत कीजिये ॥४॥
गारगी सम देवियां पुरुषार्थी त्यागी बनें।
होवें सभी यहां वानप्रस्थी मोह को हर लीजिये ॥५॥
पालन करें आश्रम निवासी शास्त्र-मर्यादा सदा।
आत्मचिन्तन रत रहें भगवन यही वर दीजिये ॥६॥
विश्वास श्रद्धा अटल हो बचते कुमार्ग से रहें।
हो तुम्हारा ध्यान निशि दिन शक्ति ऐसी दीजिये ॥७॥
अब तो यही आशा लगी अपनाय हमको लीजिये।
दरश देके करो पावन शरण में रख लीजिये ॥८॥

एक महात्मा का प्रसाद

यदि आप लोग शीघ्रातिशीघ्र परम शांति चाहते हैं तो निम्नलिखित शिक्षा ग्रहण करें। वास्तव में परम शांति परमपद परमगति परमधाम आत्मा परमात्मा राम निज स्वरूप होने से आपके पास अति समीप से समीप है। इतना समीप है जितना आपका मन भी आपके समीप नहीं है, अर्थात् राम आपके रोम-रोम में व्याप्त है, किसी अन्य स्थान पर नहीं बैठा हुआ है।

१—सकल संसार में नारायण राम की भावना करें। किसी भी प्राणी को मन, वाणी शरीर द्वारा दुःख न दें;

बल्कि सम्भव हो तो सुख ही देना चाहिये। इस संसार में एक ही पुण्य है, एक ही पाप है, एक ही धर्म है, और एक ही अधर्म है। और वह है :—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

भावार्थ—भगवान् व्यास जी का कहना है कि दूसरे को सुख देने के समान तो कोई पुण्य नहीं है और दुःख देने के समान पाप नहीं है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीरा सम नहिं अधमाई॥
नर शरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भवभीरा॥

भावार्थः—दूसरे को सुख देने के समान धर्म नहीं है और दुःख देने के समान अधर्म नहीं है।

२—कोई आप को दुःख दे तो उस पर क्रोध नहीं करना चाहिये, बल्कि समझना चाहिये कि मेरे अपने किये हुए कर्म ही मुझे दुःख दे रहे हैं। दूसरा कोई किसी को दुख नहीं देता है।

बोले लखन मधुर मृदुवानी। ग्यान विराग भगति रससानी॥
काहुन कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

भावार्थ—जब निषादराज ने भगवान् राम को वन में कष्ट पाते हुए देखा तो वे माता कैकेई को बुरा भला कहने

लगे। ऐसे अवसर पर श्री लक्ष्मण जी ने ज्ञान वैराग्य एवं भक्ति से सनी हुई यह बात कही कि हे भाई! माता कैकेई का दोष नहीं है, यह तो अपने पूर्वकृत कर्मों का ही दोष है

सुखस्य दुखस्य न कोऽपिदाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा
अहं करोतीति वृथाभिमानः स्वकर्म सूत्रैर्ग्रथितोहिलोकः ॥

भावार्थ--सुख और दुःख कोई दूसरा नहीं देता है। यह तो जीवों के अपने अच्छे बुरे कर्मों का फल ही सुख दुख के रूप में उन्हें प्राप्त होता है। मुझे दूसरा सुख-दुख देता है, ऐसा सोचने वाला खोटी बुद्धि वाला है, एवं इसी लिये दुःखी होता है। अतः दुख-सुख के लिए किसी को दोष नहीं देना चाहिये।

३--किसी के द्वारा कटु वचन बोलने पर अथवा क्रोधित होने पर बदले में अपने को उस पर क्रोध न करके उसे क्षमा ही करना चाहिये। इससे बढ़ कर कोई अन्य पुण्य कार्य नहीं है।

४—छल, कपट, चोरी आदि का व्यवहार कभी न करें और झूठ कभी न बोलें।

५--सदा बड़ों की आज्ञा का पालन करें।

६--कभी किसी की निन्दा (चुगली) न करें।

७--न तो अपने घर परिवार वालों की निन्दा किसी

से करें और न दूसरे की निन्दा सुनें। किसी प्रकार की निन्दा करने या सुनने वाले आपके हितकारी नहीं हैं।

८—बिना प्रयोजन के कहीं आना-जाना, कुछ देखना-सुनना, बोलना-चालना आदि कार्य न करें। अपने मन-इन्द्रिय को सदा वश में रक्खें।

९—सदा प्रेमपूर्वक मीठी वाणी में ही बोलें।

१०—संसार को मिथ्या (झूठा) जान कर इसके लिए हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये।

११—जो कुछ भगवान दें, उसी पर संतोष करना चाहिये एवं भगवान को उसके लिए धन्यवाद देना चाहिये।

१२—सांसारिक सभी काम निष्काम भाव से करें। सकाम भाव से न करें, सकाम भाव से कार्य करने से जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा नहीं मिल सकता।

१३—अपने पारिवारिक कामों को भी निष्काम भाव से ही करें, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा की इच्छा से कभी न करें। घरेलू कामों में मितव्ययता (कम खर्ची) बरतनी चाहिये। फ़जूल-खर्ची अशांति देने वाली तथा विनाश करने वाली होती है।

१४—स्त्रियों को चाहिये कि वे सदा अपने पतिव्रत धर्म पर दृढ़ रहें। कभी किसी पर-पुरुष पर कुदृष्टि न डालें। पुरुषों को भी किसी पराई बहु बेटियों पर कुदृष्टि नहीं डालनी चाहिये। सदा अपने मन को वश में रखना चाहिये।

१५—सास को चाहिये कि अपनी पुत्रवधुओं को पुत्री से भी अधिक प्रेम करें एवं बहुओं को चाहिये कि सास को अपनी माता से बढ़ कर मानें। ननदों को अपनी भौजाइयों से प्रेम का बर्ताव करना चाहिये न कि वैर विरोध का।

१६—परस्पर गोतनियों (देवरानी जेठानी) को बड़े प्रेम से रहना चाहिये। झूठे नाशवान् पदार्थों के लिए लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिये। अपनी अपनी लड़कियों को दहेज कम बेश देने के लिये विवाद न करते हुए जो कुछ घर के मुखिया करें उसी में संतोष करना चाहिये।

१७—हर समय भगवान् से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! हमें सुमति दो तथा कुमति दूर करके हमें अपने चरणों की प्रीति का वरदान दो।

१८—दोनों समय भगवान की आरती उतार कर ही भोजन करना चाहिये। बिना आरती उतारे अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिये।

१६—सभी विवेकी समाज के बन्धुओं को चाहिये कि कोई पुत्रवधू या अन्य स्त्री कभी विधवा हो जाये और वह अपने धर्म पर स्थिर रहे तो सास, ससुर को उसे मन, वाणी, शरीर से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहिये, अपितु उसे भगवान् स्वरूप या तपस्विनी जानकर सुख देना चाहिये। यदि इस प्रकार हम लोग नहीं करते हैं और उसे कष्ट देते हैं तो वह भगवान् को कष्ट देने के समान ही होता है और कष्ट देने वाले के सभी किये हुए धर्म-कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिए हम सभों को सभी शुभ कर्मों में उसे निरादर की जगह उचित स्थान देना चाहिये।

यदि परम शांति चाहते हैं तो आज से नाशवान् और महान् दुःख रूप संसार सुखों की इच्छा भूल कर भी नहीं करनी चाहिये, यदि करोगे तो स्वप्ने में भी शांति नहीं प्राप्त होगी। सांसारिक सुखों की इच्छा करना उल्टा दुःखो को बुलाना है।

अगर उपरोक्त उपदेशों को सभी बहिन भाई अपने व्यवहार में लावेंगे तो सांसारिक जीवन श्रेष्ठ एवं शांतिमय होने के साथ २ पारलौकिक कल्याण का साधन अवश्य बन जायगा।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

* गुरु सेवा *

(महात्मा सुखानन्द जी ज्ञानी)

जप तप ज्ञान धियान अरु, पढ़िये वेद पुराण।
बिन गुरु भगती जीव का, कबहुँ न हो कल्याण ॥१॥
सतगुरु के उपदेश बिन, कोई न उतरे पार।
गुरु पग लागि अनेक जन, हो गये भव जल पार ॥२॥

गुरु भक्ति की आवश्यकता क्यों है और वेद, शास्त्र, पुराण, साधु-सन्त गुरु महिमा के गीत क्यों गाते हैं? कारण यह है कि जीव माया में फँसकर काल और कर्म के प्रभाव से ऐसा भूल गया है कि उसे यह ज्ञान ही नहीं रहा कि मैं कहां से आया हूँ, कहां जाऊंगा, क्या करना था और क्या कर रहा हूँ ?

जैसे रेशम का कीड़ा अथवा मकड़ी अपने में से तार निकाल कर उसमें आप ही फंस जाते हैं, या जैसे बन्दर मुट्ठी भर चने के लालच में अपने को कैदी समझने लगता है उसी प्रकार जीव भी भ्रम जाल में फंसकर कुटुम्ब, संसार तथा संसार के पदार्थों को पाने में संसारी बन बैठा है और इस बंधन में दिन रात दुःखी होकर चिल्ला रहा है; परन्तु अनेक उपाय करने पर भी, बन्धन बढ़ते जा रहे हैं:-

'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की'।

अब यह बन्धन किस प्रकार निवृत्त हो सकता है? सद्गुरु की कृपा से जीव के बन्धन दूर हो सकते हैं अन्यथा और कोई भी उपाय जन्म मरण तथा सांसारिक कष्टों से छूटने का नहीं है।

॥ दृष्टान्त तीसरे पातशाह-गुरु अमरदास जी का ॥

श्री सूर्यप्रकाश जी में इतिहास आता है कि गुरु अमरदास जी ने गुरु दरबार में आने से पहिले इक्कीस बार पैदल ही अनेक तीर्थों की यात्रा की और वैष्णव धर्म के अनुसार कर्म-काण्ड भी करते रहे, परन्तु उनके हृदय को शांति नहीं मिली। अन्तिम बार जब आप हरिद्वार से स्नान करके अपने घर को लौट रहे थे, तो अम्बाले के समीप उनको एक ब्रह्मचारी से भेंट हो गई जो कि उस समय प्यास से व्याकुल थे। गुरु अमरदास जी के पास लोटा डोरी देखकर ब्रह्मचारी जी ने पानी पिलाने के लिये प्रार्थना की। गुरु अमरदास जी ने उनको बड़े प्रेम पूर्वक पानी पिलाया और काफी समय तक भगवत् चर्चा होती रही। इसी बीच में ब्रह्मचारी जी गुरु अमरदास जी से पूछ बैठे कि 'आपके गुरु कौन हैं?' गुरु अमरदास जी बड़े सरल स्वभाव से कहने लगे कि ब्रह्मचारी जी! मैंने अभी तक किसी को गुरु धारण नहीं किया है। ब्रह्मचारी जी—यह तो मुझसे बड़ा भारी पाप हो गया

जो मैंने तुम्हारे हाथ से जल पी लिया। निगुरे के हाथ से खाने-पीने में बड़ा ही पाप लगता है; निगुरे का किया दान, पुण्य, तीर्थ, व्रत, जप, तप, सब ही निष्फल हो जाते हैं। यहां तक कि देवता भी उसके हाथ का दिया हुआ ग्रहण नहीं करते। इसलिये अब आप जल्दी गुरु धारण करो; जीवन क्षण भंगुर है—न जाने कब काल पकड़ ले जावे। इतना कह कर ब्रह्मचारी जी चले गये। इधर गुरु अमरदास जी को बड़ा ख्याल हुआ कि मैंने आज तक जो कुछ भी किया वह निष्फल हो गया। इसलिये अब अवश्य ही किसी पूर्ण गुरु की शरण में जाऊँगा। घर आये, परन्तु इसी बेचैनी में कि "हाय! अभी तक मैं निगुरा हूँ।" सारी रात नींद नहीं आई। सवेरा हो गया, लोग उठकर स्नान पूजा आरती में लग गये। कानों में कुछ अद्भुत शब्दों की ध्वनी पड़ने से वे ध्यान देकर सुनने लगे :—

पढ़ पुसतक संधिया बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं॥
मुख झूठ बिभूषन सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं॥
गलि माला तिलक लिलाटं। दुइ धोती बस्त्र कपाटं॥
जो जानसि ब्रह्मं करमं। सभ फोकट निसचै करमं॥
कहु नानक निसचौ धियावै। बिनु सतिगुरु वाट न पावै॥

[पं० १३५३]

कानों में इस प्रकार की वाणी के पड़ते ही मानों प्राण ही निकल गये, उठे और पता किया कि यह वाणी कौन गा रहा है ? खोज पर ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्र-वधु गा रही थी। गुरु अमरदास जी उसके पास जाकर बड़े नम्रभाव से कहने लगे, बेटी ! जो वाणी अभी २ गा रही थीं वह किसकी है और वह कहां मिलेंगे ? वह कहने लगी कि यह वाणी श्री गुरु नानक देव जी महाराज की है। गुरु अमरदास जी ने पूछा 'बेटी ! क्या वह अब भी मौजूद हैं ?' उसने उत्तर दिया नहीं, मेरे पिता जी इस समय उस गद्दी पर विराजमान हैं।' गुरु अमरदास जी कहने लगे, 'बेटी मुझे तुम उनके पास ले चलो मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।' लड़की ने कहा पिता जी की आज्ञा बिना जाना तो नहीं चाहिये परन्तु आपकी आज्ञा से चलती हूँ' गुरु अमरदास जी गुरु अंगददेव जी के दरबार में (जो कि उस समय खण्डवा में लगा हुआ था) पहुँचे। लड़की श्वसुर को बाहर छोड़कर अपने पिता जी के पास पहुंची और प्रार्थना की, 'पिता जी ! मेरे श्वसुर जी आपके दर्शनों के लिये पधारे हैं और बाहर खड़े हैं।' गुरु अंगद देव जी दरबार से उठकर बाहर आये और अपने बड़े रिश्तेदार के नाते चरणों में प्रणाम करना चाहा परन्तु गुरु अमर दास जी ने उन्हें रोककर स्वयं गुरु अंगद

देव जी के चरणों में प्रणाम किया और कहा 'महाराज! मैं रिश्तेदार बनकर नहीं आया हूँ, बल्कि सेवक बन कर आया हूँ। आप तो अपनी कृपा दृष्टि ही मुझ पर रक्खें। गुरु अंगद देव जी ने आज्ञा दी, जैसी तुम्हारी इच्छा"। दरबार में जाकर गुरु अमर दास जी एक किनारे बैठकर सत्संग सुनने में मस्त हो गये। गुरु अंगद देव जी कहने लगे :—

भाई रे भगति हीन काहे जग आइया। पूरे गुरू की सेव न कीन्हीं विरथा जनम गवाइआ ॥

अर्थ—हे प्राणी यदि भगवान् की भक्ति नहीं करनी थी तो संसार में मनुष्य का शरीर क्यों पाया? भोगों में जीवन लगाना था तो कहीं पशु-पक्षी का जन्म ही अच्छा था। मनुष्य जन्म पाकर पूरे गुरु की सेवा न करने से मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला गया। जैसा दुःखी आया था वैसा ही दुःखी, बल्कि कहीं ज्यादा दुःखों को एकत्र करके संसार से चला। शरीर एक मकान है। मन कोठा या कमरा है। जिसमें कर्म रूपी ताला लगा हुआ है। अन्दर आनन्दकन्द भगवान् विराजमान् हैं। परन्तु अनेकों उपाय करके भी ताला नहीं खुलेगा, क्योंकि इस ताले को खोलने की ताली सद्गुरु के पास ही है। जिस जीव पर सद्गुरु की दया अथवा कृपा हो जाती है उसके घर का ताला खुल जाता है और वह जीव अपने

अन्तर में अपनी आत्मा के दर्शन पाकर निहाल हो जाता है। वही जीव बड़भागी है जो सर्व प्रकार की सेवा करके सद्गुरु को प्रसन्न कर लेता है।

गुरु अमर दास जी दरबार में रहकर सत्संग सुनने लगे। नित्य सवेरे उठकर व्यास नदी से गुरु महाराज की के स्नान के लिये जल लाते और शेष सब समय लंगर की सेवा किया करते। व्यास नदि पर जाते समय उल्टे पैरों जाया करते थे, ताकि गुरु महाराज जी की ओर पीठ न हो जाय; यद्यपि स्थान से नदी का फासला लगभग चार-पांच मील था। इसी प्रकार सेवा करते २ गुरु अमर दास जी को बारह साल बीत गये। बुढ़ापा होने के कारण शरीर दुर्बल हो गया, पर सेवा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया।

एक दिन गुरु अमर दास जी नदी से जल लेकर लौट रहे थे। रात अभी शेष थी; अंधेरा होने के कारण एक जुलाहे के मकान के पास एक गड्ढे में गिर पड़े, परन्तु जल के घड़े को नहीं गिरने दिया। किसी के गिरने के शब्द को सुनकर जुलाहा जुलाहिन से कहने लगा कि इस वक्त कौन है; जो गड्ढे में गिरा है। जुलाहिन कहने लगी, "होगा वही अमरू निथावां, जिसका न घर है न घाट है। मुफ्त में ही गुरु अंगददेव जी के

पास पड़ा रहता है। गुरु जी को भी मुफ्त नौकर मिला हुआ है। जुलाहिन की बात सुन कर गुरु अमर दास जी कहने लगे 'बावली! तू क्या समझे इन बातों को।' इतना कहना था कि जुलाहिन बावली हो गई। गुरु अमर दास जी ने साधारण रूप से ही 'बावली' कहा था, परन्तु गुरुमुख की वाणी में शक्ति थी, इसलिये जुलाहिन को बावली होना पड़ा। गुरु अमरदास जी गुरु महाराज की सेवा में पहुँचे। गुरु अंगद देव जी ने पूछा, 'कहो आज क्या हुआ?' गुरु अमर दास जी ने कहा 'भगवन् जी! आप सब कुछ जानते हैं, फिर मैं क्या बताऊँ। 'परन्तु गुरु महाराज की आज्ञा से सारी संगत के सामने अपने गिरने की और जुलाहिन ने जो कुछ कहा था सब बात कह सुनाई। गुरु अंगद देव जी ने जुलाहे और जुलाहिन को दरबार में बुलाया और उसके सामने ही कहा, "तुम इसे निथावयां समझते हो? आज से अमरू निथावयां का थांव, निमानियां का मान, निता-नियां का तान और निओटां की ओट हुआ—आज से गुरु गद्दी सौंप देते हैं।'

देखो तेरह साल की कठिन सेवा के बाद परमात्मा के दर्शन प्राप्त हुए, अर्थात् ब्रह्मभाव दृढ़ होगया। सुतीक्ष्ण तो चौबीस साल तक गुरुसेवा करता रहा तब उसे भगवान के दर्शन हुए। जो गुरु की शरण प्राप्त करके

तन-मन-धन से सेवा करता है उसी को परमपद की प्राप्ति होती है। खाली बातों से जब संसार के लोग ही नहीं रीझते तो भला गुरु महाराज बिना सेवा के कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? गुरु अमर दास जी ने परमात्म-प्राप्ति के लिये कितनी वार तीर्थ किये; व्रत, उपवास और कर्म-काण्ड करते हुए भी शान्ति न मिली—अन्त में पश्चाताप ही करना पड़ा। सद्गुरु से मिलाप हो जाने पर परमात्मा के दर्शन पाकर वह अपनी वाणी में कहते हैं:—

दो०—सद्गुरु की सेवा सफल है, जो कोई करे चित्त लाय।
नाम पदारथ पाईये, उत्तम पदवी पाय॥

अर्थ—सद्गुरु की सेवा सफल तब होती है जब कि चित्त लगाकर की जाये। यदि दिल लगाकर सेवा नहीं की जायेगी तो उस सेवा से कोई लाभ नहीं होगा। सद्गुरु की सेवा से क्या मिलता है, तो समझाते हैं कि नाम रुपी धन पदार्थ और उत्तम पद अर्थात् 'वह स्थान जिसे सत्य-लोक सचखण्ड या परम धाम कहते हैं, जहां से वापिस लौट कर नहीं आया जाता' प्राप्त होता है।

जब उन्हें परमात्मा के अपने अन्दर ही दर्शन हुए तो दुनियां वालों से पुकार-पुकार कर यही कहा कि:—

गुरु प्रणाम—इस गुफा में अखंड भंडारा ।
तिस विच बसे हरि अलख अपारा ॥

भावार्थ—हे दुनियां के लोगों! शरीर रूपी गुफा में आनन्द का अखण्ड भण्डार है । इस में हड्डियां, रक्त, मांस तथा चमड़ा ही न समझ लेना, बल्कि इस शरीर रूपी घर में, अलख अपार परब्रह्म परमात्मा का निवास है ।

भजननं० १

ना तन ही रहा, ना मन ही रहा,
गुरु मिलने से झगड़ा खतम हो गया ॥ टेर ॥
मेरे गुरु ने पिलाया हरि नाम रस,
मेरे बाहिर भीतर इक रंग हो गया ॥ ना तन० ॥
जो कि वायदा किया था गर्भ के अन्दर,
सद्गुरु की कृपा से वह पूरा हुआ ॥ ना तन० ॥
जो कि मात पिता सुत दारा मिले,
बाजीगर वाला खेल खतम हो गया ॥ ना तन० ॥
मेरे जन्म मरण के दुःख मिटे,
मैं तो अज अविनाशी अमर हो गया ॥ ना तन० ॥
मेरे सद्गुरु की महिमा कहां लग कहूँ,
मेरा दूई वाला दाग खतम हो गया ॥ ना तन० ॥

प्रार्थना नं० २

हे देव तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रंग से लाते हैं॥
धूमधाम से साज बाज से, प्रभु मंदिर में आते हैं।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥
मैं गरीबनी निष्किचन, कुछ भी भेंट नहीं लाई।
फिर भी साहस करके प्रभुजी, मैं मन्दिर में चली आई॥
नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की विधि नहीं जानती फिर भी नाथ चली आई॥
पूजा और पुजावा प्रभुजी, इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो॥
मैं उन्मत्त प्रभु प्रेम की भूखी, हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों में अर्पित है तन मन, चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥

भजन नं० ३

यह प्रेम सदा भरपूर रहे, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥टेक॥
यह अरज़ मेरी मन्ज़ूर रहे, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में।
निज जीवन की यह डोर प्रभो,तुम्हें सौंपी दयाकर इसको धरो।
उद्धार करो ये दास पड़यो, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में॥

संसार में देखा सार नहीं, तब श्रीचरणों की शरण गही ।
भव बन्ध कटें ये विनती है गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥
आंखों में तुम्हारा रूप रमे, मन ध्यान तुम्हारे मगन रहे ।
तन अर्पित निज सब कर्म करे, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥
यों शब्द मेरे मुख से निकलें, मेरे नाथ जिन्हें सुनके पिघलें ।
मेरे भाव सदा ऐसे हो रहें, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में ॥

भजन—४

गुरु कृपा ही सार जग में ॥
ना मैं जानूं मन्दिर मस्जिद, गिरजा और गुरुद्वार ॥टेक॥
बैठ के भक्ति-भाव से बन्दे जपले उनका नाम ।
उनकी सेवा पूजा से तू करले बेड़ा पार ॥
वेद पुराण शास्त्र और दर्शन पायें न जिसका पार ।
ले अनमोल रतन वो अपने खड़े हैं तेरे द्वार ॥
दुःख दरिद्र संताप से जन का करने अब उद्धार ।
नराकृति परब्रह्म परमेश्वर आये बन गुरु द्वार ॥

भजन—५

बहनों सत संगत में आया करो—
बहनों रामनाम गुण गाया करो ॥टेर॥
बहनों सत्गुरु की महिमा बढ़ाया करो ।
बहनों जीवन को अमली बनाया करो ॥

राम नाम की जाजम बिछी है—
बहनों तुम बैठो औरों को बैठाया करो ॥
हरि नाम के हार बटत हैं—
बहनों तुम पहरो औरों को पहनाया करो ॥
राम नाम के लड्डू बटत हैं—
बहनों तुम खावो, औरों को खिलाया करो ॥
सत संगत में तुम नित आकर, देहाध्यास को दूर हटाकर ।
बहनों ज्ञान का रंग चढ़ाया करो ॥
सत संगत में नित तुम आकर,गुरु चरणोंमें शीश निवाकर ।
बहनों जीवन को सफल बनाया करो ॥

भजन—६

सत गुरु सत गुरु बोल मोरे मनुवां ॥टेर॥
इधर उधर मत डोल मोरे मनुवां ॥
भवसागर की गहराई में, इधर उधर मत डोल मोरे मनुवां ।
इस गहराई के भीतर से, मोती मोती रोल; मोरे मनवां ॥
कंचन सी काया पाई है, तूं ने यह अनमोल मोरे मनुवां ।
इस काया की प्याली में तूं गुरुनाम रस घोल मोरे मनवां ।
माया में क्यों भरमाया है,दे खिड़की अब खोल मेरे मनुवां ॥
दिल देकर दिलबर मिलता है,ज्ञान तराज़ू तोल मोरे मनुवां ।
गुरुसेवा गुरुभक्ति प्रथमकर,फिर निज हृदय टटोल मोरे मनुवां
जब गुरुमुख से ज्ञान मिले तब,कर आनन्द कलोल मोरे मनुवां ॥

भजन—७

तारों में चन्द्र समान हो तुम, गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ।
हम सबके जीवन प्राण हो तुम, गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥
मुद्दत से थी तलाश मुझे, गुरु मिल गये आपसे आप मुझे ।
सेवा में लगालो नाथ मुझे, गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥
एक अर्ज़ मेरी मंजूर करो, अब नाथ मेरी इक टेर सुनो ।
मेरे दिल का अंधेरा दूर करो, गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥
यह दासी नाथ पुकार रही, चरणों में शीश निवाय रही ।
दे डालो चरण की भक्ति मुझे, गुरुदेव तुम्हारी जय होवे ॥

भजन नं० ८

पर उपकारी आये सतगुरु, पर उपकारी आये ॥ टेर ॥
हरि स्यों लैन मिलाये मेरे सतगुरु, पर उपकारी आये ।
युग युग दे विच सत्गुरु आये, भेद किसे नहिं पाये ॥
ज़ोर कलू दा आन के होया, मोह निद्रा विच सब जग सोया ।
सुत्यां नूं आण जगाये मेरे सतगुरु, पर उपकारी आये ॥
दो मणक्यां दी माला जेहड़ी बिन कर जिह्वा दे विच फेरी ।
अजपा जाप जपाये मेरे सत्गुरु, पर उपकारी आये ॥
ला के कुँजी खिड़की खोली, रङ्गा रङ्ग दी सुन लई बोली ।
अभेद गुरु बतलाये मेरे सतगुरु, पर उपकारी आये ॥
ऊँचे महल में ज्योति जगाई, जड़ चेतन की गांठ खुलाई ।
उलट नयन दरसाये मेरे सतगुरु, पर उपकारी आये ॥

जग तारण को सत्गुरु आये, महिमा दा कोई अन्त न पाये।
सृष्टी में यश छाये मेरे सत्गुरु, पर उपकारी आये॥
घट घट की वो जानन हारे, सगुण होय के आप पधारे।
दास भेद नहिं पाया मेरे सत्गुरु, पर उपकारी आये॥

भजन—९

यदि भव बन्धन से बचना है, गुरुपद में ध्यान लगा लेना।
यह जीवन नैया डूब रही, जल्दी से पार लगा लेना॥
जो लख चौरासी घूम घूम, यह नर तन तूने पाया है।
विष सम विषयों से बच-बच के यह जीवन सफल बना लेना॥
तन धन कुटुम्ब अभिमान छोड़, यह साथ तेरे न जावेगा।
जब काल की कुरकी होवेगी, अपना सामान बचा लेना॥
छल माया मोह कपटको त्याग, और सत्संगत में जाकरके।
निज आतम को परमात्म जान, यह ज्ञान का रंग चढ़ा लेना॥
विद्यानँद सोच समय ऐसा, फिर यह नहिं आने वाला है।
बस यही परम पुरुषारथ है, जीते जी मुक्ति कमा लेना॥

भजन—१०

(मेरे) गुरु के समान नहीं दूसरा जहान में ॥टेर॥
शिव रूप जाणों गुरु, विष्णु के स्वरूप हैं।
साक्षात् ब्रह्म जाणों, लिखा है पुराण में ॥ (मेरे) गुरु के०
यही वेद श्रुति कहती, गुरु बिना ज्ञान नाहीं।
ज्ञान बिना मुक्ति कैसे, आई तेर ध्यान में ॥ (मेरे) गुरु के०॥

सत्गुरु की सेवा कीजे, झूठ कपट सब छोड़ दीजे ।
ज्ञानी गुरु की शरण लेकर, मस्त रहो निज ध्यान में ।।
ज्ञान बतावे गुरु, पापों से बचावे गुरु ।
ब्रह्म से मिलावे गुरु खेलो निर्वाण में ।। (मेरे) गुरु के० ।।

भजन—११

मेरे डारे कर्म सब धोय, मैं वारी जाऊँ सत्गुरु की ।।टेर।।
सत्गुरु ऐसा चाहिए रे, ज्यों सिकलीगर होय ।
जन्म जन्म के मोर्चा रे, छिन में डारे धोय ।।टेर।।
सत्गुरु ऐसा चाहिए रे, ज्यों दीपक घर जोय ।
आई पड़ोसन ले गई रे, दिवला से निवला जोय ।।टेर।।
सत्गुरु ऐसा चाहिए रे, ज्यों धुबिया घर होय ।
प्रेम सिला पर डाल के रे, दिये पाप सब धोय ।।टेर।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्वाण ।
जो पद की निंदा करिहैं, ताको नरक निशान ।।टेर।।

भजन—१२

शिवोऽहं ध्वनि को गाया कर, सुनाया आज सत्गुरु ने ।।टेर।।
पड़ा जो द्वैत का पड़दा, हटाया आज सत्गुरु ने ।।१।।
कठिन भवसिन्धु की धारा में डूबे बहु उछले ।
किया है पार नैया पर, चढ़ाया आज सत्गुरु ने ।।२।।
अशिव भूतों के पुतले को, समझता था जो यह मेरा ।
असत अभिमान था भ्रम से, छुड़ाया आज सत्गुर ने ।।३।।

हुआ मैं चक्रवर्ती भूप, मेटी मन की कंगाली ।
बताकर आत्म धन, दुःख को मिटाया आज सतगुरु ने ।।४।।
जो था सुख शान्ति का गुलशन, सुखाया मोह ग्रीषम ने ।
विमल विज्ञान के जल से, सिंचाया आज सतगुरु ने ।।

भजन—१३

हों गुरु जी ऐसा संत सुहावे, म्हारे प्यारे रीं संदेशो सुनावे ।
कृपा सिन्धु शीतल जैसे इन्दु, कबहूँ नहि जीव सतावे ।।१।।
अपने तन से कोई दुखिया हो जावे तब ही मन पछतावे ।
मधुरा बोले हृदय ग्रन्थी खोले, अमृत जल बरसावे ।।२।।
ज्ञान का दाता मेटे त्रासा, ये तीनोंई ताप नसावे ।
सब में खेले नहीं होवे मैले, अधम जीवों को तारे ।।३।।
दे उपदेश म्होंने ज्ञान बतावे, भूल्योरो रस्तो बतावे ।
संतों की संग तरा सुख वर्णया न जावे, बिछुड़त प्राण नशावे ।।४।।
ज्ञान ध्यान की जुगती बतावे, म्हाने अचार विचार सिखावे ।
कहे विवेक संत सुखदाई, पूर्व पुनों से पावे ।।५।।

भजन—१४

तने हाथ कछु नहीं आवे ।।टेर।।
मन रे ऊँधो किण दिश जावे, तै ने हाथ कछु नहीं आवे ।।१।।
विषयों में धावे सुख नहीं पावे, ओ पीछे पछतावे ।।२।।
जाग्रत दौड़ स्वपन में दौड़े, वृथा ही गोता खावे ।।३।।
स्वर्ग पताल दशोंदिश जावे, क्यों तू चक्र लगावे ।।४।।

नट भौंड़े ज्यूँ नाचत नहीं लाजै, कुण तन नाच नचावे ।।५।।
तज के असार सार को पकड़ो, काल कबहूँ नहीं खावे ।।६।।
ब्रह्म समुद्र जगत तरंग है, सिन्धु में लहर समावे ।।७।।

भजन—१५

मुझे सतगुरु संत मिलाय सखी, मेरे मनकी तपत बुझाय सखी ।
झूठे कार व्यवहार जगत् के, मैं व्यर्थहि रही फँसाय सखी ।।
आन बसी चोरन की नगरिया, लूट २ धन खाया सखी ।।
बिन गुरु ज्ञान मोक्ष नहीं होवें, कोटिन जतन कराय सखी ।
ब्रह्मानन्द मिले गुरु पूरा, भव बन्धन मिट जाय सखी ।।

भजन—१६

बहनों री मेरा सतगुरु ऐसा रे,सतगुरू ऐसा बताऊँ मैं कैसा ।
नारायण जैसा रे, सईयां ये मेरा सतगुरु ऐसा रे ।।टेर।।
धरती जैसा धीरजवान, ऊँचा अम्बर जैसा रे ।
सूरज चंदा तेजस्वी रे, सीतल चंदा जैसा रे ।।बहनों री०।।
कामधेनु जैसा काम करे, कल्पवृक्ष सरीखा रे ।
केशर जैसा सोहना, कस्तूरी जैसा रे ।।बहिनों री०।।
घृत का चीकना रे, मीठा मिश्री जैसा रे ।
मोती जैसा ऊजला रे, पावन चन्दन जैसा रे ।।बहनों री०।।
भक्तों के हृदय में ऐसे विराजे, जैसे पिंजर स्वांसा रे ।
रोम रोम में रम रहा, सदा हृदय में वासा रे ।।बहनो री०।।

भजन—१७

सदा गुरुन संग रहि ले रे मनुवां, क्यूं करता है नादानी ।टेर।
कृपा दृष्टि जब सत्‌गुरु हेरे, तब निर्मल होवे प्राणी ॥१॥
कांच सूर्य की भई एकता, अग्नि प्रगटत हम जानी ॥२॥
तैसे गुरु के दरस परस से, आत्म ज्योति ले पहचानी ॥३॥
अन्तःकरण कांचवत जानों, सूरजवत सत्‌गुरु ज्ञानी ॥४॥
सबका साक्षी हमें लखा कर, बोलत अमृत वाणी ॥५॥
विज्ञानानन्द गुरु गुण गावें, ब्रह्मज्ञान के जो दानी ॥६॥

महावाक्य कीर्तन—१८

शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहम् ।
नहीं बुद्धि मन भी नहीं चित्त हूँ मैं,
सदा एक रस हूँ मैं साक्षी शिवोऽहम् ॥ १ ॥
न मैं ज्ञान इन्द्रिय, नहीं कर्म इन्द्रिय,
नहीं प्राण संज्ञा हूँ द्रष्टा शिवोऽहम् ॥ २ ॥
मैं तन भी नहीं हूँ, न तन ही है मेरा,
नहीं सप्त धातु हूँ अविचल शिवोऽहम् ॥३॥
न मैं पंच वायू, नहीं पंच कोशा,
नहीं भूत पांचों सनातन शिवोऽहम् ॥ ४ ॥
है मुझ में नहीं लोभ मोहादि कुछ भी,
सदा राग द्वेषों से न्यारा शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

नहीं लेश भी पुण्य पापों का मुझमें,
अकर्ता अभोक्ता अजन्मा शिवोऽहम् ॥ ६ ॥
नहीं सुख दुःखों का है आवेश मुझमें,
नहीं वर्ण आश्रम का बन्धन शिवोऽहम् ॥ ७ ॥
न माता पिता बन्धु कोई है मेरा,
सभी भूत प्राणी का कारण शिवोऽहम् ॥ ८ ॥
सभी ठौर व्यापक मैं रहता निरन्तर,
सभी में सभी से निराला शिवोऽहम् ॥ ९ ॥
सदा शुद्ध हूँ मैं, सदा मुक्त हूँ मैं,
निराकार मैं निर्विकारी शिवोऽहम् ॥ १० ॥
नित्योऽहं परोऽहं शिवः केवलोहम्,
ये सत्‌गुरु की वाणी सदा ही शिवोऽहम् ॥ ११ ॥

प्रार्थना—१९

नमो नमो गुरुदेव जी, नमो नमो लख बार ।
दासी जान दया करो, आई हूँ शरण तुम्हार ॥ १ ॥
भाव भक्ति जाणूं नहीं, नहीं जाणूं प्रेम व्यवहार ।
दया दृष्टि की भीख दो, मिटें दुःख अपार ॥ २ ॥
अधमउधारण भयहरण, तुम अनाथ के नाथ ।
तेरी शरण में आयऊँ, पकड़ लेउ प्रभु हाथ ॥ ३ ॥
दीन-हीन मति मन्द हूँ लम्पट निपट गंवार ।
रीत प्रीत जानूँ नहीं, किस विधि उतरूं पार ॥ ४ ॥

धर्म-कर्म किये नहीं लादे पाप का भार।
तन तरंनी जर - जर भई, बूढ़ रह्यो मँझधार ॥५॥
हे दीन बन्धु दुःख भंजन, हे त्रिभुवन के नाथ।
तेरी सेवा में सदा रहूँ, जग में होवे न हास ॥६॥
मंगलमय करुणामय, दर्श गुरू के होय।
धर्म कर्म सुफल भयो, नैन परम सुख होय ॥७॥
जब प्रभु का दर्शन भया, मिटे अमित खेद।
भाग्य हमारा उदय भया, धन्य धन्य गुरुदेव ॥८॥

आत्म स्तोत्र—२०

हम अखण्ड अदण्ड तीनों, हम आनन्द स्वरूप हैं।
अजर अमर प्रकाश निशदिन, जांहि छाये न धूप हैं॥
तीन भेद विहीन सद ही हमरो रूप अनूप हैं।
नित्य शुद्ध प्रकाश घट घट, सर्व रूप अरूप हैं॥
निराकार आकार ना मम, निर्विकार निरामयं।
निराधार अधार सबके, नित तृप्त अकामयं॥
निरालम्ब अदम्भ निर्गुण, निर्विकल्प अनामयं।
निश्चलं निर्लेप निर्मल, निश्कलं निरधामयं॥
न हैं मानव देव नर पशु, पंचकोश अतीत हैं।
वर्ण आश्रम जाति नाहीं, श्वेत श्याम न पीत हैं॥
न ब्रह्मचारी गृही वनस्थी भिक्षु नाहिं पवीत हैं।
अस्ति भांति प्रिय रूप हमरो, सर्व भीत अभीत हैं॥

देश काल न वस्तु मेरा, सर्व भेद प्रनाशकं।
नाहिं ध्याता ध्यान ध्येय मम, सर्व रूप प्रकाशकं॥

नाहिं सजाति विजाति मेरी, पुनि स्वगत न भासकं।
सत् चित आनन्द रूप मेरो, स्वःप्रकाश विकाशकं॥

हम ही ब्रह्मा विष्णु शंकर, हम धणेश गणेश हैं।
हम ही यम वरुण इन्द्र बृहस्पति, हम ही देव देवेश हैं॥

हम ही शक्ति शक्ति उड़गण, हम ही चन्द्र दिनेश हैं।
हम ही कृष्ण गोपाल माधव, हम ही रघु अवधेश हैं॥

हम ही ब्रह्म चिदेव पूरण, हम ही जगत सुकारणं।
हम ही गोविन्द हरि नारायण, हम ही सब जग धारणं॥

हम ही आदि युगादि युग युग, हम ही सर्व सँहारणं।
हम ही अन्तर बाहर सब के, सर्व रूप उजारणं॥

आदि अन्त से रहित हूँ, मम अन्त वेद न पावहीं।
अप्रमाण वखानते, कथ कथ सुकथ हट जावहीं॥

मम रूप अगम अगाध है, कहीं पारावार न आवहीं।
सम सिन्धु के भरपूर सद, आडोल नाहिं डुलावहीं॥

निराकार निरूप हम इक, मन वाणी नहीं गहत है।
अष्टादश षट वेद चारों, नेति नेति सु कहत हैं॥

सर्व रूप स्वरूप मेरो, सर्व कलना रहित हैं।
कहत मोहन नाहिं दूसर, हमही अणु अरु महत हैं॥

सतगुरु ज्ञान की महिमा--२१

भव से हमें छुड़ाने वाला ज्ञान निराला सतगुरु का ॥टेक॥
नारद मुनि का शोक हटाया, भूमा ही सुख रूप बताया।
शान्ति सुधा बरसाने वाला ज्ञान निराला० ॥ १ ॥
दशरथ का भ्रम दूर किया था, भेद भक्ति को चूर किया था।
तत्क्षण मुक्ति दिलाने वाला ज्ञान निराला० ॥ २ ॥
तारा का दुःख द्वन्द्व मिटाया, आतम अजर अमर दरसाया।
रोते हुए को हँसाने वाला ज्ञान निराला० ॥ ३ ॥
कुन्ती सुत का मोह नशाया, कायरता को दूर भगाया।
रूप विराट दिखाने वाला ज्ञान निराला० ॥ ४ ॥
गुरु गोविन्द के राजदुलारे, भीत चुने पर धर्म न हारे।
निर्मल हृदय बनाने वाला ज्ञान निराला० ॥ ५ ॥
शूली पर मंसूर पुकारा, अनलहक्क विज्ञान हमारा।
अनूपम शक्ति बढ़ाने वाला ज्ञान निराला० ॥ ६ ॥

भजन—२२

सुनाओ सोऽहं सार, करो भव पार सतगुरु प्यारा।
मैं पूजूं चरण तुम्हारा ॥टेर॥
इस दुनिया से घबड़ाया हूँ, मैं शरण आप की आया हूँ।
मुझ दुखिया का दुःख टार, सतगुरु प्यारा ॥ मैं पूजूं० ॥
मद काम क्रोध रिपु घेरे हैं, चौरासी चक्कर फेरे हैं।
मोहे जल्दी लेवो उभार, सतगुरु प्यारा ॥ मैं पूजूं० ॥

मम हेतु प्रभो क्यों की देरी, तन नैया भँवर पड़ी मेरी।
अब खेकर करदो पार, सत्गुरु प्यारा ॥ मैं पूजूं ॥
ये दासनदास की अरजी है, मानो तो आपकी मर्ज़ी है।
हम पड़े तुम्हारे द्वार, सतगुरु प्यारा ॥ मैं पूजूं० ॥

शबरी के प्रति भगवान राम का उपदेश—२३

नवधा भक्ति कहें भगवान् शबरी सुनो लगाकर कान ॥टेर॥
प्रथम भक्ति संतन कर संगा, दूसर रति मम कथा प्रसंगा।
तीसर गुरुपद सेव अमाना, चौथि भक्ति मम गुण गण गाना॥
करिये सत्य वस्तु का ज्ञान। शबरी० ॥ १ ॥
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकासा।
तत्त्वमसी यह साम बतावे, ऋग प्रज्ञानं ब्रह्म लखावे।
धारे अहं ब्रह्म उर ध्यान। शबरी० ॥ २ ॥
षट दम शील विरत ब कर्मा, तिरत निरंतर सज्जन धर्मा।
संतई सब जग मोहिमय देखो, मो ते संत अधिक करि लेखे।
जिससे निष्ठा रहे महान्। शबरी० ॥ ३ ॥
अष्टम यथा लाभ सन्तोषा, सपनेहुँ नहिं देखे पर दोषा।
नवम सरल सब सों छलहीना, मम भरोष हिय हर्ष न दीना।
जीवनमुक्त यही विज्ञान। शबरी० ॥ ४ ॥

मेरा आनन्द स्वरूप—२४

आनन्द सिन्धु मेरा, साक्षी स्वरूप ही है।
जिसकी लहर चराचर आनन्द रूप ही है ॥टेर॥

मुझ पूर्ण में कहाँ फिर, सत्ता कहो दुःखों की।
दुःख रूप भासता जो, वह भ्रान्ति रूप ही है ॥१॥
आनन्द किरण जग नहिं आनन्द से न्यारा।
ज्यों धूप सूर्य ही है, अरु सूर्य धूप ही है ॥२॥
जो राम कृष्ण आदिक, अवतार हो गये हैं।
हरिहर सुरेश ब्रह्मा, चिद्घन अनूप ही है ॥३॥
सत्गुरु की सैन पा ली, निकली सभी बेहाली।
विज्ञान अब स्वतन्त्र, भूपों का भूप ही है ॥४॥

भजन—२५

ऊधो मुझे संत सदा अति प्यारे।
जा की महिमा वेद उचारे ॥ टेर ॥
मेरे कारण छोड़ जगत के भोग पथारथ सारे।
निस दिन ध्यान धरे हृदय में, सब घर के काज विसारे ।टेर।
मैं संतन के पीछे जाऊँ, जहां जहां सन्त सिधारे।
चरणन रज निज अङ्ग लगाऊँ, शुद्ध गात हमारे ।टेर।
संत मिलें तब मैं मिल जाऊँ, सन्त न मुझसे न्यारे।
बिन संतन मुझे पावे नाहीं, कोटि जतन कर डारे ।टेर।
जो संतन के सेवक जग में, सो सेवक मोरे भारे।
ब्रह्मानन्द संत जन पल में, भव बन्धन कट डारे ।टेर।

भजन—२६

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठें तो रूठन दे ।टेक।
कुटुम्ब परिवार सुत दारा, माल धन लाज लोकन की ।
हरी के भजन करने में, अगर छूटे तो छूटन दे ॥
बैठ संतन की संगत में, करूँ कल्याण मैं अपना ।
लोक दुनियां के भोगों में, मौज लूटे तो लूटन दे ॥
प्रभु के ध्यान करने की, लगी दिल में लगन मेरे ।
प्रीति संसार विषयों से, अगर टूटे तो टूटन दे ॥
धरी सिर पाप की मटकी, मेरे गुरुदेव ने झटकी ।
वो ब्रह्मानन्द ने पटकी, अगर फूटे तो फूटन दे ॥

भजन—२७

बता दे मोक्ष का मारग, गुरू मैं शरण हूँ तेरी ॥टेक॥
जगत के बीच में नाना, किसम के पंथ हैं भारी ।
सुनाते हैं कथा अपनी, भटकते हो गई देरी ॥
कोई मूरत के पूजन को, बतावें होम करने को ।
कोई तीरथ के दर्शन को फिराते हैं सदा फेरी ॥
किताबें धर्म चर्चा की, हज़ारों बांच कर देखीं ।
मिटा संशय नहीं मन का, अकल जंजाल में घेरी ॥
सकल दुनिया में है पूरण, सुना मैं रूप ईश्वर का ।
वो ब्रह्मानन्द बिना देखे, मिटे नहीं भरकना मेरी ॥

भजन—२८

दिखादे रूप ईश्वर का मुझे गुरुदेव करुणा कर ।।टेक।।
कोई बैकुन्ठ के ऊपर कोई कैलाश पर्वत में ।
कोई सागर के अन्दर में, बतावे शेष शय्या पर ।।
कोई दुर्गा गजानन को, कहे जगदीश सूरज को ।
कोई सब सृष्टि का करता, चतुर्मुख देव परमेश्वर ।
धरें नित ध्यान योगी जन, कोई निर्गुण निरञ्जन का ।
कोई मूरत पुजारी है कोई अग्नि का है चाकर ।।
सकल संसार में पूरण, कहें वेदान्त के वादी ।
वो ब्रह्मानन्द संशय को, मिटा कर तारें भवसागर ।।

भजन—२९

जै जै सतगुरु ब्रह्म लखैया, तुमको लाखों बन्दना ।।टेर।।
भवसागर से पार करैया, तुमको लाखों वन्दना ।।
भ्रम की झुकी अँधेरी भारी, सूझ न पड़ता था अविकारी ।
जय जय ज्ञान सूर्य प्रगटैया ।। तुमको० ।।१।।
निष्ठा जो थी तन में भारी, देकर के उपदेश निवारी ।
सत् चित्त आनन्द रूप बतैया ।। तुमको० ।।२।।
जग तारन को धरे शरीरा, हर लेते निज जन की पीरा ।
निर्गुण अचल मैं नित्य रमैया ।।तुमको० ।।३।।
नेति नेति सब वेद बतावें, सुर ब्रह्मादिक पार न पावें ।
सुख विज्ञान के प्रभु दरसैया ।। तुमको० ।।४।।

जिधर फिरती नज़र मेरी, निहारूँ मैं तूहीं तू है ॥टेक॥
सिवा तेरे नहीं कुछ भी, तूहीं तु है तूहीं तू है ॥ १ ॥
कहीं नाला कहीं सरवर, कहीं जंगल कहीं गिरवर।
अजब तव रूप है नटवर, तूहीं तू है तूहीं तू है ॥ २ ॥
कहीं राजा महल धारी, बना फिरता है भिखारी।
कहीं नर हो गया नारी, तूहीं तू है तूहीं तू है ॥ ३ ॥
बना फिरता है दीवाना, कहीं आज़ाद मस्ताना।
कहीं पण्डित कहीं नादां तूहीं तू है तुहीं तू है ॥ ४ ॥
तूहीं ब्रह्मा बना हरिहर, तूहीं घनश्याम मुरलीधर।
तूहीं बाहर तूहीं भीतर तूहीं तू है तूहीं तू है ॥ ५ ॥
तूहीं निर्गुण सगुण भी है, तूहीं है जीव ईश्वर भी।
सभी कुछ भी नहीं कुछ भी, ये मुक्तानन्द तूहीं तू है ॥ ६ ॥

भजन—३१

म्हाने सतगुरु दीनी रे बताये, दलाली हीरा लालन की ॥टेर॥
लाल लाल सब कोई कहे रे, सबके पल्ले लाल।
गांठ खोल देखी नहीं रे, इस विधि भया रे कंगाल ॥ १ ॥
लाल पड़ी चौगान में रे, रही कीच लपटाय।
मूरख जन देखी नहीं रे, हरिजन लेई रे उठाय ॥ २ ॥
लालां का कोठा भरा, लाला का भरा भण्डार।
जे कोई ग्राहक होयसी जी, लालां का मोल चुकाय ॥ ३ ॥

लाल झड़े लोहा झड़े जी, झड़झड़ पड़े अंजीर।
रामानन्द को लाड़लो जी, काकड़ लड़े रे कबीर ॥४॥

भजन—३२

मन मस्त भया फिर क्यों डोले ॥टेर॥
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई फिर क्यों तोले ॥१
सुरत कलाली भई मतवाली, मदवा पी गई बिन तोले ॥२
हंसा पाया मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ॥३
हीरा पाया गांठ लगाया, बार बार वाँ क्यों खोले ॥४
अपनो साहिब है घट भीतर, बाहर नैनां क्यों खोले ॥५
कहत कबीर सुनों भाई साधो, साहब मिल गया तिल ओले ॥

भजन—३३

अगर सत्गुरू जी हमें न जगाते,
तो सतसंग की गंगा में हम कैसे नहाते।
चंचल चिकनाई से अति हैं मैले,
विषयों की स्याही से हम हैं कुचैले ॥१
उपदेश की साबुन हम न लगाते,
तो शान्ति सफ़ाई को हम कैसे पाते ॥२
ज्ञान का अंजन नैनों में न पाते,
हृदय कपाट क्या आपे खुल जाते ॥३
दुई के परदे को दूर हटाते,
तब हरि आप स्वरूप समाते ॥४

मोक्ष की पैड़ी पर हमको बैठाते,
सोऽहं सोऽहं माला जपाते ॥५॥

गरल को पान कियो जब मीरां,
तब हरि अमृत कर कर पाते ॥६॥

मीरां शरण लई गिरधर की,
कोटि जतन राणों जी हारे ॥७॥

सागर को जल कैसे गागर में समावे,
सतगुरु का गुण कैसे जसवन्ती गावे ॥८॥

भजन—३४

भव तरने को औसर आयो रे ॥टेर॥

बहुत जन्म के पूर्ण पुण्य से, मानुष तन पायो रे।
ईश्वर किरपा संत समागम, गुरु चरणों में आयों रे ॥१॥
प्रेम को पुष्प ध्यान को धूप दे, चित्त को चन्दन चढ़ायों रे॥२॥
शील संतोष अमान अहिंसा, दान उर लायो रे ॥३॥
काम क्रोध मद लोभ मोह की, खान बहायो रे ॥४॥
त्याग वैराग्य श्रद्धा धार के, भेद भाव हटायो रे ॥५॥
अनेक युगों की मैल त्याग के, ज्ञान गंगा में नहायो रे ॥६॥

भजन—३५

त्याग विषय रसरंगा, करो रे मन सत्संगा ॥
जन्मान्तर के पाप धोय ले, बहै ज्ञान की गंगा ॥करो०॥
देह धर्म तू क्यों अपनावे, यह पचरंगा भंगा।
सत्गुरु से निज रूप जान ले, साची ब्रह्म अनंगा ॥करो०॥
आत्म रूप शिव राम कृष्ण है, लखकर होजा चंगा।
गर्जन कर विज्ञान शिवोऽहं, उड़े अज्ञान विहंगा ॥करो०॥

भजन—३६

शिवोऽहं का डंका बजाना पड़ेगा।
मृषा द्वैत भ्रम को भगाना पड़ेगा ॥शिवो०॥१
जिसे देख भूले हो असली को भाई।
इस मृग जल के भ्रम को मिटाना पड़ेगा ॥शिवो०॥२
यह संसार झूठा और व्यवहार झूठा।
इन्हें छोड़ सच में समाना पड़ेगा ॥शिवो०॥३
समझ जाओ पल में, या जन्मों जनम में।
यही वाक्य दिल में जमाना पड़ेगा ॥शिवो०॥४
अगर तुम कहो इस बिना पार जावें।
ग़लत भेद भक्ति हटाना पड़ेगा ॥शिवो०॥५
धरो ध्यान अपना जो सर्वत्र व्यापी।
नही गर्भ में फिर से आना पड़ेगा ॥शिवो०॥६
सत्गुरू का कहना अटल मान लेना।
नहीं दर दर धक्कों को खाना पड़ेगा ॥शिवो०॥७

भजन—३७

मन तज मेरी मेरी, न होगी यह तेरी।
जानत है पर मानत नाहीं, करत भजन में देरी ॥न होगी०॥
चार दिनां की रात उजेली, फिर हो जाय अंधेरी।
देह अभिमान में डूबा, होत ख़ाक की ढेरी ॥न होगी०॥
मुक्ति हेत विज्ञान ज्ञान कर, श्वास फिरै नहि फेरी ॥न होगी०॥

भजन—३८

हम तुमसे जुदा हो सारे जनम, रोते ही रहे रोते ही रहे।
विषयों में फँसा मन हीरे जनम, खोते ही रहे खोते ही रहे ॥
हृदय में छुपे थे तुम तो मगर, हमको न रही इतनी भी खबर।
हम भूल तुम्हें दुनियां के सितम, सहते ही रहे सहते ही रहे ॥
जब दिल में तुम्हारी याद लगी, आंसू बह जमुना धार हुई।
माया में मगन होके हरदम, सोते ही रहे सोते ही रहे ॥
सतगुरु ने दिया अज्ञान हटा, हम एक हुए सब भेद मिटे।
हम व्यर्थ गुफाओं में ही तुम्हें, ढूंढ़ते ही फिरे, ढूंढ़ते ही फिरे ॥

भजन—३९

सतगुरू मेरे ज्ञानी गुरू मेरे।
मेरे मन का हरो विकार जी मैं आई शरण तुम्हारी ॥
महा पतित हूँ जनम जनम की कैसे मुख दिखलाऊँ।
पापों-का प्रभु भार बहुत है कैसे शरण में आऊँ।
सतगुरू मेरे ज्ञानी गुरू मेरे मेरी नैया करदो पार जी ॥

पतित पावन नाम तुम्हारा मैं पतितों की सरदार ।
नाम जपे से लाखों तर गये कोई न पावे पार ।
सतगुरू मेरे ज्ञानी गुरू मेरे, मुझे तेरा ही आधार जी ।।
अब तो आसा चरण कमल की नाम जपूं दिन राती ।
दुनियां की सब चाल दुरंगी मुझे नहीं कुछ भाती ।
सतगुरु मेरे ज्ञानी गुरू मेरे मैं करूँ तुम्हीं से प्यार जी ।।
जिस दिन से प्रभु अपनाये हो मिट गये सब दुःख मेरे ।
जो हैं प्रेमी भक्त आपके रहूँ उन्हीं के नेड़े ।
सतगुरू मेरे ज्ञानी गुरू मेरे इस भक्त की राखो लाज जी ।।

भजन—४०

गुरु शक्ति दो गुरु भक्ति दो, मैं सहूँ सभी की बात जी ।
मेरा मन मैला ना होय, प्रभू जी मेरा मन० ।।टेर।।
जो कोई निन्दा करे हमारी, उसकी करूँ भलाई ।
कुछ भी चर्चा करें जगत में, सब ही लोग लुगाई ।।प्रभु०।।
गुरु शक्ति दो गुरु भक्ति दो, कोई गाली दे दिन रात जी ।मेरा०।
निन्दक को मैं नेड़े राखूं, दूर न जाने दूँ ।
आप न खाऊँ, भूखी रहकर उसको खाने दूँ ।।प्रभु जी०।।
गुरु शक्ति दो गुरु भक्ति दो, नहीं पूछूँ उसकी जात जी ।मेरा०।
तन मन धन से करूँ मैं सेवा, मीठे बोलूँ बोल ।
जनम २ का मित्र है निन्दक, कहूँ बजा कर ढोल ।प्रभु०।
गुरु शक्ति दो गुरु भक्ती दो, इस भक्त की राखो लाज जी ।मेरा०।

भजन—४१

आनन्द आयो जी गुरुदेव दया कर अमृत प्यायो जी ॥
पूरब पुण्य मानुष तन पायो विषय भोग में खोयो जी ।
जब गुरुदेव दयाकर म्हारो फंद छुड़ायो जी ॥टेर॥
काम कूट गुरुदेव दयाकर साँचो पंथ दिखायो जी ।
जग झूठो दरसाय हिये कों भरम मिटायो जी ॥टेर॥
यह संसार स्वप्न की माया मूरख मन ललचायो जी ।
टूक एक सुख काज मूढ़ नर, क्यूं भटकायो जी ॥टेर॥
गुरू उमेद शरण में आयो जनम मरण छुटवायो जी ।
मस्तक मेल्यो हाथ श्री मुख यूं फरमायो जी ॥टेर॥

भजन—४२

आनन्द लूटो जी संसार कूप से क्यों नहीं छूटो जी ॥टेर॥
मात पिता सुत कुटुम्ब कबीलो यो झगड़ो सब झूठो जी ।
साँच सुमर हरि नाम मूढ़ मति फिरे अपूठो जी ॥टेर॥
मति कर तू अभिमान मूरख काया काचो कूड़ो जी ।
एक दिन सबसे न्यारा होय जासी प्राण अपूठो जी ॥टेर॥
राजा रंक खाक मिल जासी ज्यों अग्नि में ठूठो जी ।
पड़ा रहे धन माल खज़ाना जद जमड़ो रूठो जी ॥
भव सागर की नाव तरन कूं गुरु नारायण तूठो जी ।
गुरू उमेद शरण में आयो जद अमृत जल पूठो जी ॥

भजन—४३

अमर बूटी दे गया मेरा सत्गुरु जी।
परम पद दे गया मेरा सत्गुरु जी॥
मैं जन्म मरण नहीं जानती, दुःख सुख में आनन्द मानती।
सुपने सम विश्व दिखा दिया मेरा सत्गुरु जी॥टेर॥
मैं ब्रह्मा विष्णु ध्यावती, मैं तेरह देव मनावती।
सभी में एक दिखा दिया मेरा सत्गुरु जी।टेर।
मैं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इन पांचों में भय खावती।
सभी से निर्भय कर दिया मेरा सत्गुरु जी॥टेर॥
मैं चारों धाम फिर आई मेरा सत्गुरु जी।
मिला नहिं राम जी मेरा सत्गुरु जी॥
मैं गुरु चरणों में जावती चरणों में शीश नवावती।
तन मन से आशीर्वाद दिया मेरा सत्गुरु जी॥टेर॥

भजन—४४

मेरे सतगुरु बो दिया बीज यतन से रख लेना।
हृदय ज़मीं को साफ़ जु करके प्रेम के जल से सीच, यतन से०॥
उगी बेल ऊपर चढ़ आई तनिक लगे नहीं कीच, यतन से०।
चतुर नार निणाणन लागी मूरख ने क्या तोल, यतन से०।
कहत कबीर सुनो भाई साधो गुरु बिन ज्ञान न होय, यतन से०॥

भजन—४५
सुरता को उपदेश

हाँ ए सुरता अपणो पीयो जी है घट माँय।
बाहर भटक्यां मिलसी नांय ॥ टेर ॥
अन्तरा-चाहे काशी मथुरा भटकाय चाहे गंगा जमुना में न्हाय।
हां ए सुरता अन्तर जोयां बिन नहीं पाय, बाहर० ॥
चाहे चढ़ जा परवत कैलाश उत्तरकाशी में कर तू वास।
हां ए सुरता ज्ञान बिना तू गोता खाय, बाहर०॥
चाहे तू करले भगवा भेष जप तप व्रत का पाय कलेश।
हां ए सुरता घट सोध्यां बिन नहीं दरशाय, बाहर०।
घट में बदरी और केदार घट में चारों धाम विचार।
हां ए सुरता अठसठ तीरथ है घट मांय, बाहर० ॥
घट में ब्रह्मा विष्णु महेश घट में दुर्गा घट में गणेश।
हां ए सुरता सब घट में प्रभु रह्यो समाय, बाहर० ॥
कृष्ण रूप सारो जग जान समझ सकल ले आप समान।
हां ए सुरता पीया मीलण रो ओई उपाय, बाहर०॥
किण सूँ राग और किण सूं त्याग दोनों मूं कर ले वैराग।
हां ए सुरता भेद भरम ने दे छिटकाय, बाहर० ॥
सम–दृष्टि हिरदे में धार कर अपने घर का व्यवहार।
हां ए सुरता यों प्रीतम सहजेई मिल जाय, बाहर० ॥
मनुष्य जन्म नहीं वारंवार ओई है मुक्ति रो द्वार।
हां ए सुरता अवसर चूक्यां फिर पछताय, बाहर० ॥

उत्तम गुरु दीनों उपदेश याद करे 'गोपाल' हमेश।
हां ए सुरता दुविधा सारी दई है मिटाय, बाहर० ॥

भजन—४६

सुरता को उपदेश

(तर्ज कलारी)

सुरता प्यारी क्यों भटके तू बार हे सुन सुरता।
कोई थारो पीयो घर रे मांयने हे ॥१॥
बाहर भटक्यां आनन्द मिलसी नांय हे सुन सुरता।
कोई आनन्द तो भरियो अपणे आप में हे ॥२॥
क्या दौड़े तू विषय भोग रे लार हे सुन सुरता।
इन विषय भोग सूं दुःखड़ो ऊपजै हे ॥३॥
मत कर तू इण काया रो अभिमाण हे सुन सुरता।
ए काया माया दोनों थिर ना रहें हे ॥४॥
शोभा निन्दा मान और अपमान हे सुन सुरता।
ए सगला ही झूठा सुपने सारसा हे ॥५॥
षट कर्मों सूं स्वर्ग मिले नहीं कोय हे सुन सुरता।
ए स्वर्ग नरक है थारी कल्पना हे ॥६॥
भूखा मरियो मन में रहे विक्षेप हे सुन सुरता।
कोई तीरथ भटक्यां सूं दुःख दूणो हुवे हे ॥७॥
गृहस्थ छोड़यां मुक्ति होवे नांय हे सुन सुरता।
कोई मुक्ति तो होसी आतम ज्ञान सूं हे ॥८॥

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र चांडाल हैं सुन सुरता ।
कोई नारी पुरुष सब आतम रूप हैं हे ॥९॥
समझ सकल में एक राम गोपाल हे सुन सुरता ।
कोई ओही साचोड़ो आतम ज्ञान है हे ॥१०॥
सम दृष्टि सूं कर अपणा व्यवहार हे सुन सुरता ।
कोई ओही मुक्ति रो खुलो द्वार है हे ॥११॥

भजन—४७

आत्म प्रेम

जग में प्यारे लगें सब अपने लिये ।
अपने लिये अपने आपके लिये, जग में प्यारे० ॥टेर॥
पति पत्नी को पत्नि पति को,
पिता पुत्र प्यारे अपने लिये ।
मात सुत्ता भगिनी और बंधू,
मित्र भी प्यारे लगते अपने लिये ॥१॥
जात पात और सगे सम्बन्धी,
गुरु शिष्य प्यारे लगते अपने लिये ।
राजा रैय्यत ग्राम नगर और,
देश भी प्यारा लगता अपने लिये ॥२॥
अन्न धन वैभव वस्त्र आभूषण,
भूमि भवन प्यारे अपने लिये ।

पशु पक्षी वन वृक्ष लता फल,
नदी पहाड़ प्यारे अपने लिये ॥३॥
आश्रम वर्ण उपाधि बुद्धि बल,
मान बड़ाई प्यारी अपने लिये।
आंख नाक मुख कान त्वचा मन,
देह भी प्यारी लगती अपने लिये ॥४॥
वेद शास्त्र और धर्म कर्म सब,
ईश्वर भी प्यारा लगता अपने लिये।
देवी देव स्वर्गादि लोक पुनि,
मुक्ति भी प्यारी लगती अपने लिये ॥५॥
जो कोई जिसको अपना माने,
उसको वह प्यारा लगता अपने लिये।
माने बेगाना जो कोई जिसको,
वह नहीं प्यारा लगता अपने लिये ॥६॥
जितने पदारथ अपने माने,
शेष बेगाने होते अपने लिये।
अपनी वस्तु जब होय बेगानी,
फिर नहीं प्यारी लगती अपने लिये ॥७॥
लगते पदारथ जब तक प्यारे,
अच्छे लगें वे अपने लिये।

मान किसी को अपना बेगाना,
दुःख उपजाते अपने लिये ॥८॥
असली प्यारा अपना आप है,
जो सदा ही अच्छा लगता अपने लिये।
सच्चिदानन्द आप है सब में,
इसी से प्यारे सब अपने लिये ॥९॥
अपने आपको जो सब में जाने,
सबको वह प्यारा लगता अपने लिये।
सब गोपाल नहीं कोई दूजा,
यही समझ मन अपने लिये ॥१०॥

भजन—४८

(तर्ज—प्यारे मोहन भैया, बांसुरिया कहँ भूल आये)

निश्चय ये ही ठहराओ, सृष्टी है रूप मेरो ॥ टेर ॥
जल थल नभ और अगन पवन में दूजो नांय दिखायो।
पंचतत्त्व में हूँ मैं बरोबर एक रस होके समायो ॥सृष्टी०॥१॥
मैं हूँ सब में सब है मुझ में यही ज्ञान मन भायो।
सकल जगत में व्याप रयो मैं नाना नाम धरायो ॥सृष्टी०॥२।
नाम रूप सब ही हैं कल्पित मैं ही सत्य रहायो।
मेरी इच्छा से सब उपजे मैं ही खेल रचायो ॥सृष्टी० ॥३॥
आदि अन्त नहीं है मेरो ना कोई जननी जायो।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र नहिं देह अभिमान मिटायो ॥सृष्टि०।४।

बहुत दिनां तक रह्यो भरम में भटक भटक दुःख पायो।
पूछ२ हैरान भयो पर किनही न मग दरसायो।। सृष्टी० ।।५।।
पंथा पंथ बहुत ही देखे सबने जाल बिछायो।
आप विचारे उलझ रहे और मुझे अधिक उलझायो ।।सृ०।६।।
जो कोई मिले सबी मतलबिया उलटा भरम बढ़ायो।
भटक२ कर हार गयो तब सतगुरु शरणे आयो ।।सृ०।७।।
पूरण गुरु जी कृपा करी मोंपै सांचो भेद बतायो।
आत्माराम भयो अब निर्भय अपनो आप लखायो।।सृ०।८।।
सब 'गोपाल' नहीं कोई दूजा यह निश्चय मोहे आयो।
जिनकी कृपा से सत्संग पाकर गुरुपद बीच समायो।।सृ०।९।।

भजन—४६

भीत भरम की तोड़े, ऐसे तोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ।।टेर।।
आप समान सब जग को बनावें, भेद-भाव को दूर हटावें
मन समता में जोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ।।१।।
आप जगें और जगत जगावें, दीनों के प्रति प्रेम बढ़ावे।
फोड़ें कुप्रथाओं के फोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ।।२।।
भूले हुओं को मारग लावें, कर्म योग का ज्ञान बतावें।
मार शब्द के कोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ।।३।।
माल खाय के जग उलझावें भांति-भांति के बंध लगावें।
वे क्यों जीवत निगोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ।।४।।
सब कुछ करते हैं जो त्यागी, ऐसे तो जग में भले हों वैरागी।

भले ही दुनिया से मुख मोड़े, ऐसे तो० ॥५॥
'मोहनराम' ऐसे सन्त जो होई, निःस्वारथ नित काम करे सोई।
वे हैं ईश्वर के जोड़े, ऐसे तो साधू थोड़े ॥६॥

भजन—५०

ऐसी बिगुल बजावो, मुरदों को फेर जिलावो ।टेर॥
मज़हब खड़ग से जो मर चुके हैं, भूल भुलैया के बंध बंधे हैं।
'तत्त्वमसि' मन्त्र सुनावो, मुरदों० ॥१॥
अहिंसा के नामरदाना, हैं तो मरद पर हो गये ज़नाना।
उन्हें फिर पुरुष बनाओ, मुरदों० ॥२॥
किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए हैं, सांची राह सब भूल गये हैं।
गीता की राह बताओ, मुरदों० ॥३॥
कितने ही मुस्लिम कितने ईसाई, हिन्दू धर्म कई पंथ चलाई।
सबको दूर हटावो, मुरदों० ॥४॥
धर्म पराया है दुःखदाई, अपने धरम पर मर मिट जाई।
स्वधर्म इन्हें समझावो, मुरदों० ॥५॥
मोहनराम सब धर्म१ को त्यागी, सब धर्मों२ को आग
लगादी। अपनी शरण में आवो, मुरदों० ॥६॥

भजन—५१

नर तू धोखे २ लुट गयो आ गई अन्त घड़ी ।टेर॥
बालापन में थी नादानी, अब तो आ गई मस्त जवानी।
तिरिया लागे स्वर्ग निशानी, अमृत रस की भरी ॥१॥

१—मजहब का भेद। २—मजहबों के भेद।

अब तो आयो बुढ़ापो वैरी, तृष्णा थी कुटुम्ब में गहरी।
इच्छा पोता व्यावरण की, हवेली नई चिणावरण की ॥२॥
शिर पर बजे काल का बाजा, चला गया तेरा बाप और दादा।
मैं तो यूं ही जाणा थो, उमर बौहत घणी ॥३॥
भानीनाथ शरण सत्गुरु की, टूटी उमर लड़ी ॥

भजन—५२

मेरे सत्गुरु पकड़ी बांह नहीं तो मैं बह जाती।
बह जाती वो बेकार साधो मैं रुल जाती ॥टेर॥
कर्म काट कोयला किया, उज्ज्वल वर्ण बनाय।
कागा से हंसा किया, मोतीड़ा दीया है चुगाय॥
भक्ति बिना यूहीं जाती ॥ मेरे सत्गुरु० ॥
दूध और पानी मिला हुआ था देखा एक सरूप।
जब सत्गुरु ने किरपा कीनी, न्यारा २ दीया है दिखाय॥
जतन बिना युहीं जाती ॥ मेरे सत्गुरु० ॥
भवसागर की गहरी नदिया डूब रही मँझधार।
जब संतों ने किरपा कीनी हाथ पकड़ के कीनी बाहर॥
समझ बिना यूहीं जाती ॥मेरे सत्गुरु० ॥
गुरु की किरपा ऐसी हम पर मुझसे. बरनी न जाय।
सीस कटादूं तो भी थोड़ा संतों ने किया उपकार॥
नाथ मैं बह जाती ॥मेरे सत्गुरु० ॥

भजन—५३

मैं सतगुरु के गुण गाऊँ मैं सन्त शरण में जाऊँ।
मैं ब्रह्म ज्ञान का झंडा लेकर गली २ फहराऊं॥ मैं संत० ॥
मैं अपने आप की माला लेकर फेरूँ और फिराऊं ॥मैं संत॥
मैं आत्म ज्ञान का अमृत प्याला पीऊँ और पिलाऊँ ॥ मैं संत
मैं सतगुरु के चरणों में जाकर मैं में मैं मिल जाऊँ ॥ मैं संत ॥

भजन—५४

तिरण त्यार ओंकार हमारे गुरु।
निराकार निर्विकार रूप हैं,भक्तन हित साकार हमारे गुरु।टेर।
ब्रह्मा बनकर सृष्टि रचते कर्मों के अनुसार हमारे गुरु।
विष्णु बनकर पालन करते शिव ननकर संहार हमारे गुरु।टेर।
नभ मंडल में बादल बनकर बरसें अमृत धार हमारे गुरु।टेर।
सूरज में परकाश रूप हैं बिजली में चमत्कार हमारे गुरु।टेर।
सत चित आनंद रूप एक रस तीन गुणों से पार हमारे गुरु।टेर।
नाम रूप माया प्रपंच के आदि देव आधार हमारे गुरु।टेर।
नाम रूप का भेद मिटाकर करते भव से पार हमारे गुरु।टेर।

भजन—५५

गुरुदेव मेरे आया द्वार तेरे ये भिखारी।
गुरु सुनिये ये अर्ज़ हमारी॥
मोहि काम क्रोध ने है घेरा।
मोह ममता का हुआ है बसेरा॥

देखूं खड़ा खड़ा लोभ मन में।
बढ़ा ये भारी ॥ गुरु सुनिये० ॥१॥
तात मात पिता और भाई।
दादी चाची भूआ और ताई॥
मेरी पुत्री खड़ी ममता पीछे पड़ी।
देखो सारी ॥ गुरु सुनिये० ॥२॥
देख इनको मैं घबराऊँ।
नाथ छोड़ छोड़ तुम्हें कित जाऊँ॥
आयो अर्ज लिये मन में मर्ज
लिये त्रिपुरारी॥ गुरु सुनिये० ॥३॥
पुत्री मांगत है वर भारी।
काटो तन की विपदा सारी॥
गुरु प्रीति बढ़े आवागमन छूटे।
तन के सारी ॥ गुरु सुनिये० ॥४॥

भजन—५६

(होली का राग—बिड़ला)

पाँच तत्त्व को जी, मेरो तन बएयो अस्थूल।
आयो भजन के काज या काया मेरे मन सही॥
तूं चाल्यो तूं चाल्यो जी मेरा मन विषयों के माहिं।
बुद्धि रा केर हवाल, बुद्धि न मिला दो ब्रह्म से।

विषय भोगों में ए, बुद्धि म्हारी सुख घणा।
वैंठी तूं आनन्द भोग, केर करोगी मिलकर ब्रह्म से ।।
कुण थारो कुण थारो ए, बुद्धी म्हारी आयो लणीहार।
कुण कहव धे जाय, कुण रा मिलाया मिलस्यों ब्रह्म से ।।
प्रथम विवेकां जी, मेरा मन आयो लणीहार।
पट शास्त्र कहवे जाय, गुरां रा मिलाया मिलस्याँ ब्रह्म से ।।
कुण थारो कुण थारो ए, बुद्धि म्हारी गूंथेगो सीस।
कुण थारा चितरैगो हाथ, कुण थारा लाडू सांदशी ।।
सम-दम सम-दम जी, मेरा मन गूंथेगो सीस।
सतसंग चितरैगो हाथ, आनन्द का लाडू सांदस्यां ।।
गैले तो गैलै ए, बुद्धि म्हारी जाये ज्यों।
मत पड़ज्यो भेदां क माहिं, काँटो जी लाग्यौ द्वैत को ।।
गैलै तो गैलै जी, मेरा मन जाये था।
पड़ गया भेदां का माहिं, काँटो जी लाग्यौ द्वैत को ।।
कुण थारो कुण थारो ए, बुद्धि म्हारी पकड़ेगो पाँव।
कुण थारो कांटो जी काढ़, कुण थारा आंसू पूँछसी ।।
सतसँग सतसँग जी, मेरा मन पकड़ेगो पाँव।
'तत्त्वमसि' काँटो काढ़, सतगुरु आंसू पूंछसी ।।
सतसँग सतसँग ए, बुद्धि म्हारी दयो धन्यवाद।
तत्त्वमसी मिल जाय, सतगुरु के प्रसाद से ।।

भजन—५७

तू क्यों ए सुरतां साथण उणमणी जी,
कोई चल सतगुरु के द्वार।
रूप निहारो जी सिरजनहार को जी॥
कै थानै आलस सुमिरण में हुयौ जी,
कोई कै थारो विसरयो पंथ।
आज उदासी सुहागण क्यूँ हुई जी॥
ना म्हाने आलस आयो भजन में जी,
ना कोई बिसरयो पंथ।
घर की उपाधी जी किस विद सह सकूं जी॥
ममता मांवसी सूँ मुखड़ो मोड़ल्यो जी,
कोई माया न दिखावो पीठ।
लोभ लफंगी को भेजो नौकरी जी॥
सुमति सखी को वचण सुलाखणों जी,
कोई समझ करो सिंगार।
नैण में सुरमों सारो सरम को जी॥
श्रद्धा की साड़ी ओढ़ी सीस पर जी,
कोई नाक में बेसर नाम।
माथे पै बिन्दी मदन गोपाल की जी॥

हार हिये विच सतगुरु शब्द का जी,
कोई रात दिवस सिंगार।
पहरयां पीछे निकालो न हुवै जी ॥
गल में गलसरी गोविंद जी की पहरल्यो जी,
कोई कानों में फूल किशोर।
बाजू तो बांधो जी सतगुरु शब्द का जी ॥
पग की पैंजनी जी बिछिया चाव का जी,
कोई चित्त चम्पा को हार।
हर हर हीरा जी मोती हार का जी ॥
पाँच पचीसी की संगत छोड़ दो जी,
कोई चल सतगुरु के द्वार।
ऊँची अटारी जी श्याम सुहावणे जी ॥
धरम की पैड़ी सुरता चढ़ गई जी,
कोई खुल गया करम किवाड़।
चेतन ज्योति भवन में जग रही जी ॥
अलख लखाय परमानन्द का जी,
कोई आनन्द अन्त न पार।
उपमा करने में वाणी गम नहीं जी ॥
सोहन गुरु से करता विनती जी,
मेरी विगड़ी बात बनाय।
चरण कमल में दीजो आसरो जी ॥

कीर्तन—५८

धरले धरले मन मन्दिर में प्यारे परमातम का ध्यान ॥टेर॥
तन इन्द्रिय मन प्राण विषय ये, पंच भूत के मान ।
सबके साक्षी सबके द्रष्टा, आत्म रूप भगवान ॥धरले०॥
तन की मैं कों छोड़ ज़रा, प्रभु की 'मैं' को पहिचान ।
मैं-मैं सब घट एक भरी है, सो हरि मैं को जान ॥धरले०॥
जो आत्म केवल मैं द्रष्टा, सत चित आनन्द खान,
सोई सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ,
मैं ओत प्रोत पहिचान ॥धरले०॥
अस्ति भाति प्रिय व्याप रहा हूँ, जग में एक समान ।
नाम रूप सब मुझ में कल्पित, मैं हूँ अचल महान ॥ध०॥
इस समाधि में रहो हमेशा, होये न दुःख का भान ।
आप आप में शेष रहे बस, आप रूप विज्ञान ॥धरले०॥

स्तुति—५९

सतगुरु सिफ़त बड़ी है भारी,
किस मुख से मैं करूँ उचारी ।
ब्रह्मा शिव विष्णु सब ध्यावें,
श्री सतगुरां जी का यश पै गावें ॥
गंगा-जमुना-सरस्वति चल आवें,
श्री सतगुरां जी का दर्शन पावें ।
सतगुरु मिलिआं हुआ आनन्द,
दुःख दरद की रही न गंध ॥

दुःख दुनिया का रहा न कोई,
ब्रह्मविद्या जब परगट होई।
अपना आप जिस सर्व पछाता,
कवन दुश्मन अरु कवन भ्राता॥
अपने आप सिउँ नहीं कोई वैर,
मैं मनावां सब की खैर।
यह सब कृपा सतगुराजी की होई,
दूजा और न कारण कोई॥
ऐसियां सतगुरां तों बलिहारी,
सकल सृष्टि जिन आप सँवारी॥

भजन—६०

रे मन मुसाफिर निकलना पड़ेगा।
काया कुटी खाली करना पड़ेगा॥टेक॥
भाड़े के क्वार्टर को क्या तू सँवारे,
जिस दिन तुझे घर का मालिक निकारे।
इसका किराया भी भरना पड़ेगा॥काया०॥
आयेगा नोटिस जमानत न होगी,
पल्ले में गर कुछ अमानत न होगी।
होकर के कैद तुझको चलना पड़ेगा॥काया०॥
यमराज की जब तुम अदालत चढ़ोगे,
पूछेगा हाकिम तो क्या तुम कहोगे।

पापों की अग्नि में जलना पड़ेगा ॥ काया० ॥

मेरी मत मानो यमराज तो मनायेंगे,
तेरा कर्म दण्ड तुझे मार के भुगायेंगे।
घोर नर्क बीच दुःख सहना पड़ेगा ॥ काया० ॥

कहे 'गीतानन्द' फिरेगा तू रोता,
लख चौरासी में खावेगा गोता।
फिर फिर जनम और मरना पड़ेगा ॥काया०॥

भजन—६१

मान मेरा कहना नहीं तो पछतायगा।
माटी का खिलौना माटी में मिल जायगा ॥टेक॥
सुन्दर रूप देखकर भूला, धन जवानी के मद में फूला।
एक दिन हंस अकेला उड़ जायेगा ॥ माटी का० ॥
पत्नी पति पिता अरु माता, सखा सुमित्र सहोदर भ्राता।
क्षण भर में नाता सभी टूट जायगा ॥ माटी ॥
हीरा जवाहर की माला तुम्हारी, मखमल के गद्दे और
रेशम की साड़ी। हैट सूट बूट सब यहीं छुट जायगा ॥माटी०॥
हीरा सा जनम गँवाय दियो सोय सोय,
फिर पछिताय हो दिवाने मन रोय रोय।
'गीतानन्द' ऐसा जनम नहीं पायेगा ॥ माटी का० ॥

भजन—६२

सन्तो हीरा सा सतगुरु जी पाया।
जिन्होंने जन्म मरण को छुटाया॥
कहन सुनन का हीरा नहीं है, दीखे अजब दिखाया।
अधर रहे, आधार नहीं है, जाके मोह न माया॥
तोल मोल में नहीं बराबर, रूप धरे बिनु छाया।
जन्म मरण से न्यारा रहता, हाड़ माँस नहिं काया॥
जीवों का उद्धार करन को, सत्त लोक से आया।
रूप देख कर नैना छक गये, हीरा मन हरषाया॥
सतगुरु जी हँस कहें सुनो बीरो, जिन २ हीरा गाया।
हीरा गाकर पार उतर गये, फेर जन्म नहिं आया॥

भजन—६३

करम[१] कर पीर-कामिल[२] ने अजब रस्ता दिखाया है।
नही चिन्ता ग़मी[३] जिसमें, खुशी के घर पहुँचाया है॥
मुझे मालूम होता था, सफ़र जो तै न होने का।
बदूं[४] तकलीफ़ मिहन्त के, वो एक पल में मुकाया है॥
बताया एक नुक़्ते[५] में, क़ुरानो वेद का मतलब।
नहीं हाजत[६] किताबों की, सबक़ ऐसा पढ़ाया है॥
तमाशा कुल खुदाई[७] का, मैं देखा आज इक बुत[८] में।
अहा हा! सैर दरिया का, नज़र क़तरे में आया है॥

---

१ कृपा २ पूर्णगुरु ३ दुःख ४ बिना ५ इशारा ६ जरूरत ७ संसार ८ शरीर।

मैं समझा था अव्वल जिसको, कहीं वह दूर है मखफ़ी[९]।
हुआ अब इस तरह ज़ाहिर, नहीं छिपता छिपाया है।
सुना था आम लोगों से, नहीं नामो निशां उसका।
यह सब नामो निशाँ उसके, वही हर जा समाया है।
सरापा[१०] ज़ात-रब्बी[११] यह, नहीं दुई की जा इस जा।
अबस[१२] ही खाम ख्यालों ने दुई का शोर पाया है।
सुना अब मत कथा पंडित, खतमकर वाज़[१३] ऐ वाअज़[१४]।
नहीं यह जी को भाते हैं, उठो क्यों मग्ज़ खाया है।
न थी जब तक खबर मुझको, रहा कैदी तुम्हारा मैं।
नहीं अब कैद होने का, यह कैसा जाल लाया है।
करूँ सिजदा[१५] मैं किस आगे, करूँ किस की इबादत[१६] मैं।
दिखा वह दूसरा ईंजा[१७], जुदा जो तुम ठहराया है।
कोई माने न माने गर, धरमदासा रज़ा[१८] उसकी।
न है मेरे सिवा कोई, मैं सच ही कह सुनाया है।

काफ़ी—६५

सत्गुरु तों बलिहारे जावां पल विच यार दिखा गये।
जन्म मरण दा रोग गँवाया इक्को पुड़ी खवा गये।
होर पढ़न दी लोड़ रही ना इक्को हरफ पढ़ा गये।
होर कितावां सब्भे ठप्पियां इक्को अलफ़ पकवा गये।

---

९ छिपा हुआ १० सिर से पैर तक ११ ब्रह्मरूप १२ बेफ़ा[illegible] फ़िजूल १३ उपदेश १४ उपदेशक १५ नमस्कार १६ [illegible] १७ इस जगह १८ इच्छा।

सुत्ते घूक असीं गफ़लत विच मार अवाज़ जगा गये ।
ऊँघाँ विच गोते सां खाँदे सत्‌गुरु ज़रा हिला गये ॥
आरफ़ लोकां सैनी कीती आशिक पल विच पा गये ।
रुख दे ओहले लख पिआ सी दानशमंद जगा गये ॥
मोर मुकट वाला सी छपिया कमली उत्तों लहा गये ।
सूरज अगे झड़सी आया वायू बने उड़ा गये ॥
लाल रुमाल विच सी धरिआ उपरों पर्दा चा गये ।
गल विच हार भुलेखा खाधा सैणत नाल लभा गये ॥
पिया सी बल अकले अन्दर सीधा तीर बना गये ।
अखियाँ विच खुमारी आई इक्को घुट पिला गये ॥
दूजा फेर कदी ना देखीं एवा गल समझा गये ।
'चतुरदास' कुछ पाया नाहीं ना कुछ असी गँवा गये ॥

भजन—६६

कहा ये चारों वर्ण चमार, आत्म बिन जाने प्यारे ॥टेक॥
ब्राह्मण सोई जो ब्रह्म पिछाने, सत्य असत्य विचार करे जो ।
बिना ज्ञान सिख और ही देवे, पूरा वही गँवार ॥आत्म०॥
क्षत्री सो षट रिपु संहारे, बिरती ढाल संतोष ज्ञान ले ।
शम दम संयम कटक बिना वो, क्षत्री नहीं सियार ॥आत्म०॥
विषयों से मन वस कर राखे,
चले नीति अनुसार सदा जो

सद्विवेक व्यापार बिना,
वह वैश्य नहीं मक्कार ॥ आत्म० ॥
शूद्र करे जो आतम सेवा,
सब साधन का सार ॥ करे जो ॥
बिन साधन संतन की सेवा,
शूद्र नहीं खूंखार ॥ आत्म बिन० ॥
मैं तन नहीं, नहीं तन मेरा,
हूँ साक्षी निर्विकार सदा मैं ।
विद्यानन्द विचार बिना,
ये होवे नहीं उद्धार ॥ आत्म बिन० ।
कहा ये चारों वर्ण चमार ॥ आत्म बिन जाने प्यारे ।

भजन—६७

कैसे मिटे है यह संसृत क्लेश आतम चीन्हे बिना ।
यह है सतगुरु का अटल संदेश आतम चीन्हे बिना ॥
बिन खाये बहु षट रस वरणत,
तृप्ती न होय लवलेश, आतम चीन्हे बिना ॥
कोई रटे राम कोई गिरधर या कोई जपत महेश, आतम० ।
करमन लादी कांधे धर कर योनी भ्रमत हमेश, आतम० ॥
मोह निशा नासत नहीं कबहुँक, होत न ज्ञान दिनेश, आ० ।
कैसे मिटि है यह संसृत क्लेश आतम चीन्हे बिना ।

भजन—६८

मेरा सत चित् आनन्द रूप कोई कोई जाने रे ॥
द्वैत वचन का मैं हूँ स्रष्टा ।
मन वाणी का मैं हूँ द्रष्टा ।
मैं हूँ साक्षी भूप, कोई कोई जाने रे ॥१॥

पञ्च कोश से मैं हूँ न्यारा ।
तीन अवस्था से भी न्यारा ।
अनुभव सिद्ध अनूप, कोई कोई जाने रे ॥२॥

जन्म मरण मेरे धर्म नहीं हैं ।
पाप पुण्य कुछ कर्म नहीं हैं ।
अज निर्लेपी रूप, कोई कोई जाने रे ॥३॥

सूर्य चन्द्र में तेज मेरा है ।
अग्नि में भी ओज मेरा है ।
मैं अद्वैत स्वरूप, कोई कोई जाने रे ॥४॥

तीन लोक का मैं हूँ स्वामी ।
घट घट व्यापक अन्तर्यामी ।
ज्यों माला में सूत, कोई कोई जाने रे ॥५॥

गुरु बहनों निज रूप पिछानो ।
जीव ब्रह्म का भेद न मानो ।
तूं है ब्रह्म स्वरूप, कोई कोई जाने रे ॥६॥

भजन—६९

ओ चेतन जीव विचार ज़रा ।
तू पूर्ण ब्रह्म सनातन है ॥
सत चित् आनन्द स्वरूप तेरा ।
कालों का काल विनासन है ॥
स्थूल वा सूक्ष्म शरीर नहीं ।
नहीं कारण देह अविद्या तू ॥
इन सब का जाननहार सदा ।
शिव साक्षी इक आनन्दघन है ॥
जाग्रत वा स्वप्न सुषुप्ति में ।
ना देश न काल परिछेद तेरा ॥
ना भेद सजाति विजाती है ।
तू तुर्यातीत महाघन है ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार नहीं ।
पंच कोषों का तू द्रष्टा है ॥
कर्त्ता भोक्ता नहीं धर्म तेरा ।
तू अन्तःकरण विशेषण है ॥
अजर अमर शुद्ध स्वरूप तेरा ।
कूटस्थ ब्रह्म निर्विकारी तू ॥
शिव ब्रह्मादिक सब रूप तेरे ।
विभु व्यापक इकरस आत्मन् है ॥

श्री सत्गुरु जी अनुकम्पा से
जिसने ममता मल धोय लिया,
'गीतानन्द' आनन्द होय सदा
सर्वत्र उसे गिरि कानन है ॥६॥

भजन—७०

ज़रा प्रेम भरो दिल आंखो में, दर्शन मेरा जित कित पाओ ॥
कभी श्यामघटा में चमकत हूँ, कभी गरजत हूँ कभी बरसत हूँ।
कभी रोवत हूँ कभी हँसत हूँ लीला मेरी लख विगसावों ॥१॥
कहीं बुलबुल मोर बना उड़ता, कहीं बैल चलाता हल फिरता।
कहीं सर्प कहीं मछली कीड़ा, मुझे पेख पेख गद्गद् जावों ॥२॥
फूलों में महकूं विगसाऊँ, हरे खेतों में लहराऊँ।
फल में रस वृक्ष में छांव करूँ, मेरी शोभा लख गुण गावों ॥३॥
कहीं पर्वत में स्थित हूँ खड़ा, कहीं नदियों में बहता फिरता।
कहीं सागर में हूँ लहराता, मेरी ही चोज़ सबमें पावों ॥४॥
कहीं गृहस्थी हूँ कहीं सन्यासी, कहीं ठाकुर हुआ कहीं दासी।
पापी भरमी में मैं बासी, सब रूप मेरे मत भरमाओं ॥५॥
मैं पिता बनूं मैं पुत्र बनूं, स्त्री भर्ता में होय रमूं।
मैं राजा हूँ मैं परजा हूँ, मेरे अनिक रूप नहीं घबराओं ॥६॥
मैं पूजों ठाकुर द्वारों में, मस्जिद में निमाज़ गुजारूं मैं।
गिरजा में ईसा पुकारों मैं, मेरी भक्ती में मन पिघलाओं ॥७॥

सब मेरा यह खेल है प्यारे, इसे देख-देख रहो मतवारे।
भय भरम वासना को जारो, 'हेमां' मुझ हर में समा जाओ ॥८

भजन—७१

चल रे हँसा उस देश जहाँ का वस्या फेर ना मरे।
जहाँ वेदों की गम नाहिं, ज्ञान और ध्यान भी उरे ॥टेर॥
जहां बिन धरणी एक बाट, चरण बिन गमन करे।
जहां बिना श्रवण सुन लेय, नयन बिना दर्श करे ॥ १ ॥
जहां बिन देही एक देव, प्राण बिना स्वास भरे।
जहां झिलमिल झिलमिल होय, उज्यारा दिन रात रहे ॥ २ ॥
जहां प्रेम नगरिया रो घाट, अधर दरियाव बहे।
जहां नहाये सुख होय, तपन तेरे तन की मिटे ॥ ३ ॥
तेरा जन्म मरण मिट जाय, चौरासी फंद कटे।
जाँते अविचल पद मिल जाय, निजातम माहि डटे ॥ ४ ॥
कहे गुलाबराय मीत! अमर पुर वास तेरा।
गुण गावे गोविन्दराय, आनन्द में सदा लग्या ही रहे ॥ ५ ॥

भजन—७२

अमर आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥टेर॥
अखिल विश्व का जो है परमात्मा,
सभी प्राणियों का वही है आत्मा ॥

वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ ॥ अमर आत्मा० ॥

जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलावे,

गलावे न पानी न मृत्यु मिटावे ॥ वही आत्मा० ॥

अजर और अमर जिसको वेदों ने गाया,

यही ज्ञान अर्जुन को हरि ने बताया।

यही ज्ञान गुरु ने हमें भी बताया ॥ वही आत्मा० ॥

अमर आत्मा है मरण शील काया,

सभी प्राणियों के है भीतर समाया ॥ वही आत्मा० ॥

हैं तारों सितारों में प्रकाश जिसका,

है चन्द सूरज में आभास जिसका ॥ वही आत्मा० ॥

जो व्यापक है कण-कण में है वास जिसका,

नहीं तीन कालों में हो नाश जिसका ॥ वही आत्मा० ॥

भजन—७२

सत्गुरु हमें मिले हैं, संसार से निराले ॥टेर॥

गुरुदेव को मैं पाकर, जीवन सफल बनाया।

दुनियाँ के झंझटों से, गुरुदेव ने बचाया ॥ १ ॥

सत्गुरु मेरे दयालु, निर्धन के ज्ञान दाता।

जिसको मैं बाहर ढूंढ़ा, वह देह में ही पाया ॥ २ ॥

वेदों का सार गुरु ने, छन एक में बताया।

गुरु की शरण में आकर, निज रूप को है पाया ॥ ३ ॥

संसार स्वप्न झूठा, गुरुदेव ने दिखाया।
ग़फ़लत में सो रहा था, गुरुदेव ने जगाया ॥४॥
आनन्द का खज़ाना, गुरु की कृपा से पाया।
उल्टें हमारी छूटीं, निज रूप में समाया ॥५॥
राजा हुआ हूँ सबका, नौकर से क्यों डरूँगा।
नट कर रहे तमाशे, द्रष्टा हो देखता हूँ ॥६॥
इन्द्रियों के काम सारे, मेरे को छू न पाते।
अब दुःख सारे भागे, अनमोल धन को पा के ॥७॥
बाँटूं बधाई सबको, गुरुदेव ने कृपा की।
पुत्री का दुःख हरने, अवतार गुरु ने धारा ॥८॥

भजन—७४

सब दुःखों को निवारे, सत्गुरु की सेवा भक्ति।
आनन्द निधि प्यारे, सत्गुरु की सेवा भक्ति ॥१॥
इन्द्रिय विकार खोवे, मन की मलिनता धोवे।
शान्ति हृदय पसारे, सत्गुरु की सेवा भक्ति ॥२॥
विनसावे शोक चिन्ता, मारे अहंता ममता।
जारे क्लेश सारे, सत्गुरु की सेवा भक्ति ॥३॥
पापों की नाश कर्ता, सब संकटों की हर्ता।
भय रोग सब निकारे, सत्गुरु की सेवा भक्ति ॥४॥

दुविधा सभी नशावे, पूरण सत्ता दिखावे।
तृष्णा का बीज जारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥५॥
धीरज छमा बढ़ावे, संतोष सत् जमावे।
आचार सब सुधारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥६॥
व्यवहार सब करें शुद्ध, सब गृहस्थ के हरे दुःख।
परतीत पत पसारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥७॥
इच्छा सकल पुजावे, जग पूज्य गुरु बनाये।
भवजल से पार उतारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥८॥
सर्वात्मा दिखाये, प्रेमामृत पिलावे।
देह भावना उखाड़े, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥९॥
गुरु में मिटावे आपा, गुरु जाने भाई बापा।
छण-छण गुरु चितारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥१०॥
ईश्वर गुरु को माने, प्राणों से प्यारा जाने।
तन मन गुरु पै वारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥११॥
सतूगुरु है 'हेमां' पूरण, शुद्ध सद् स्वरूप चिद्घन,
गुरु सिन्धु में सिधारे, सतूगुरु की सेवा भक्ति ॥१२॥

भजन—७५

आओ प्यारी बहनों, सतूगुरु दर्शन पाइये ॥
आओ प्रेमी भक्तो, सतूगुरु दर्शन पाइये ॥टेर॥
सतूगुरु परम मनोहर सुख निधि, पेख-पेख तृप्ताइये ॥१॥

दर्शन से किल्विष सब नाशे, रोम रोम विगसाइये ॥२॥
चरणामृत सतुगुरु का लेकर, ताप क्लेश मिटाइये ॥३॥
हाथ जोड़ कर नम्र-भूत हो, मन तन भेंट चढ़ाइये ॥४॥
सतुगुरु दर्शन सर्व से उज्जवल, हृदय तिमिर मिटाइये ॥५॥
मोहन पावन परम प्रेम सुख, रुच रुच हृदय समाइये ॥६॥
दर्शन पाय संकट सब काटे, भय और भरम गवाइये ॥७॥
गुरु का दर्शन हरि का दर्शन, परम भाग्य से पाइये ॥८॥
दर्शन से चित्त शीतल होवे, मन की इच्छा पुजाइये ॥९॥
पाय पाय गुरु दर्शन 'हेमा', ज्योति में ज्योति समाइये ॥१०॥

भजन—७६

अरे मन गुरु के तू चरण पकड़ ले,
चरण पकड़ भव से पार उतर ले ॥टेर॥
कोटि जन्म का यह पुण्य मिला है,
सतुगुरु के चरणों में प्रेम हुआ है ॥१॥
अरे मन तुझे सतुगुरु समझाते,
दो ही वस्तु इस जग में बताते।
वेदों का गुरु ने सार बताया,
करके कृपा तेरा रूप दिखाया ॥२॥
कैसे दयालू पिता हैं हमारे,
अनमोल वचनों की वर्षा बरसाते।
सतुगुरु की वाणी जगत से निराली,
भव बन्धन की बनी है यह आरी ॥३॥

सत्गुरु के शब्दों में ऐसी है शक्ति,
भेद भरम को तुरन्त ही भगाती ॥
देकर के ज्ञान सुखी कर देवे,
जन्म जन्म का रोना छुटावे ॥४॥
तन मन धन सत गुरु को दिया है,
तेरा तो हक अब उस पर नहीं है ॥
होके मस्ताना रहो दुनियाँ में,
प्रेम के आंसू रहें अखियों में ॥५॥

भजन—६१

आ गये गुरुदेव मेरे, आत्म धन लुटवा रहे।
लूट लो कोई भाग्यशाली, यह समय नहीं आवना ॥टेर॥
मनुष्य जन्म पाया है बहनों, मुक्ति करने के लिये।
आवो बहनों लूट लो, यह आत्म धन अनमोल है ॥
विषय सुख की वासना तेरी, लख चौरासी घुमा रही।
मनुष्य तन में ज्ञान पाकर, आवागमन छुड़ाय लो ॥
सप्त धातु का बना यह पुतला ही खराब है।
सत्गुरु के पास जाकर, अपना रूप पिछान लो ॥
मात पिता और भाई बन्धु, जगत में उलझा रहे।
सच्चे हितकर एक सत्गुरु, वही तुझे छुड़वा रहे ॥

तीन तापों से मेरे, गुरुदेव ने छुड़वा दिया।
चार साधन ज्ञान के, बतला के मुक्त बना दिया॥
चारों तरफ़ संसार में, अज्ञान का दुःख छा रहा।
फिर भी अन्धे हो रहे, गुरु शरण में नहीं आवते॥
पुत्री की यह विनती गुरु जी ध्यान से सुन लीजिये।
आ पड़ी गुरु चरण में प्रभु, अब नहीं बिसराइये॥

भजन—७८

गुरु का ज्ञान पाकर के, चढ़ी मस्ती निराली है॥
जिधर फिरती नज़र मेरी, उधर गुरुदेव ही दीखें॥टर॥
गुरु ने ऐसी की कृपा, दुई का भरम मिटवाया।
पिला कर ज्ञान का प्याला, जगत को दूर करवाया॥१॥
बना मैं देह बैठ था, नहीं सुध थी मेरी मुझको।
हटा कर तीन परदों को, दिखाया रूप ईश्वर का॥२॥
कलेशों पाँच में पड़ कर, उठाता था मैं दुःख भारी।
करी करुणा गुरुजी ने, बचा लीना बचा लीना॥३॥
अटल पदवी दई गुरु ने, नहीं कोई छीन पावेगा।
बना मनवां मेरा नौकर, सदा आज्ञा से चलता है॥४॥
मेरे गुरुदेव ने खोली, पाठशाला निराली है।
पढ़ाई ऐसी होती है, ब्रह्म से मेल करते हैं॥५॥
परीक्षा जब तुम्हारी हो, तो तुम उत्तीर्ण हो जाना।
नहीं डिगना किसी से भी, नहीं बातों में आ जाना॥६॥

तुझे गुरु की कृपा प्यारे, कभी गिरने न देवेगी।
तुरत ले करके गोदी में, सदा आनन्द देवेगी ॥७॥
मेरे गुरुदेव पुत्रों को, कभी भी भूल मत जाना।
रहे यह पुत्र चरणों में, धरो गुरु हाथ मस्तक पर ॥८॥

भजन—७९

नित नेम करके, शुद्ध प्रेम करके;
चले आना गुरु के दरबार में ।टेर॥
सत्गुरु की सेवा मधुर है मेवा।
मेवा खाने के लिये, दुःख मिटाने के लिये; चले आना० ॥
सत्गुरु की बानी, अमृत की खानी।
अमृत पीने के लिये, हमेशा जीने के लिये; चले आना०॥
सत्गुरु की कृपा, है मुक्ति की दाता।
मुक्ति पाने के लिये, शोक मिटाने के लिये; चले आना०॥
सत्गुरु का दर्शन है ब्रह्म दर्शन।
ब्रह्म अभ्यास के लिये, अविद्या नाश के लिये; चले आना०॥

भजन—८०

जीवन का भार उतार दिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥टेर॥
एक आश्रय मन में धार लिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥
उत्तम मध्यम या नीच हूँ मैं,
लघुता की मुझको फिक्र नहीं।
अब तो मैंने शिर डाल दिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥१॥

काशी प्रयाग या हरिद्वार,
गोकुल मथुरा में क्यों जाऊँ।
एक तीर्थ अब स्वीकार किया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥२॥
मन्दिर मस्जिद जङ्गल पहाड़,
बद्री केदार में क्यों भटकूं।
पूजा घर एक विचार लिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥३॥
षट शास्त्र अठारह पुराण,
गीता स्मृति में क्यों भटकूं।
सारे ग्रन्थों का सार लिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥४॥
मैं पतित हूँ तुम पावन हो,
मैं सेवक हूँ तुम स्वामी हो।
गीतानंद आसन डाल दिया, गुरुदेव आपके चरणों में ॥५॥

भजन—८१

भण्डार सकल सुखों का है, गुरुदेव आपके वचनों में।
दुःखहारे हरे दुखियों का है, कल्याण आपके वचनों में ॥टेक॥
नहीं कर्म नहीं ज्ञान भक्ति,
विषयों में जिसकी अनुरक्ति।
उसको भी तारन की शक्ति, गुरुदेव आपके वचनों में ।१।

विश्राम नहीं एक हूँ पल है,
मन में षट रिपुओं का दल है।
उसको भी जीतने का बल है, गुरुदेव आपके वचनों में ॥२॥
मिल गई नाम रस की बूटी,
मद मोह की है तृष्णा छूटी।
भव रोग नाश की है बूटी, गुरुदेव आपके वचनों में ॥३॥
कलि में सब साधन विघ्न भरे,
भव सागर कोई कैसे तरे।
तर जाय अगर विश्वास करे, गुरुदेव आपके वचनों में ॥४॥
यह दास तुम्हें कर जोर कहे,
यह अरज़ मेरी मंजूर रहे।
बढ़ता ही निरन्तर प्रेम रहे, गुरुदेव आपके वचनों में ॥५॥

भजन—८२

घर घर में पूजा होंगी अब तो जय गुरुदेव की ॥
गायेंगे सब गुण गान मिलकर, जय गुरुदेव की ॥टेक॥
आयेंगे आश्रित हो कर के, सब जय गुरुदेव की ॥
पायेंगे जो चाहेंगे कृपा, जय गुरुदेव की ॥
आयेंगे अब सत्संग में सब, जय गुरुदेव की ॥
सब गंगा में नहायेंगे अब, जय गुरुदेव की ॥
पछतायेंगे जो निन्दा करते, जय गुरुदेव की ॥

शरमायेंगे सुन करके महिमा, जय गुरुदेव की ॥
घबरायेंगे सुन के डंका, जय गुरुदेव की ॥
गुण गायेंगे गलियों-गलियों में, जय गुरुदेव की ॥
जो जो न शरण में आयेंगे अब, जय गुरुदेव की ॥
उनको शान्ति कहां बिन गाये, जय गुरुदेव की ॥
सत्संगी जय-जयकार मनाये, जय गुरुदेव की ॥
घट-घट में प्रगट दर्शन पाये, जय गुरुदेव की ॥

कीर्तन—८३

साधो सद्गुरु पूजन कीजै ॥

विषय वासना जग की प्रीति, सो हृदय शुद्ध करीजे ॥१॥
हृदय मन्दिर श्रद्धा बजरंगी पर, सत्गुरु पधरीजे ॥२॥
सत्गुरु पूरण भगवत् सुखनिधि, यह आवाहन कीजे ॥३॥
शान्ति भक्ति सतता श्रद्धा, के नित फूल चढ़ीजे ॥४॥
आत्मचिन्तन मनन निदिध्यासन, यही प्रदच्छिणा लीजे ॥५॥
घट घट चिद्वे गुरु निश्चय कर, ऐसी आरती कीजे ॥६॥
सत्गुरु के पावन गुण धारण, यह चरणामृत पीजे ॥७॥
सत्गुरु हरिहर निश्चय करके, रुच-रुच शीश नवीजे ॥८॥
अहंता ममता दच्छिणा करके, आतम तिलक चढ़ीजे ॥९॥
'हेमराज' सत्गुरु पूजन कर, पूरण ब्रह्म समीजै ॥१०॥

भजन—८४

दुनियाँ वालो आँखें खोलो, क्या हम लेके साथ चले।
जिस सूरत में हम आये थे, उससे भी खाली लौट चले।टेर।
जब आये थे कुछ और नहीं, इस तन को साथ में लाये थे।
ले जाना फिर क्या दुनियां से, इस तन को भी छोड़ चले॥
जो कुछ पूंजी ले आये थे, उसको भी खोये जाते हैं।
ले जाना था राम भजन, पर पाप की गठरी लाद चले॥
जिस दुनियाँ को अपनी समझे, बैठे मस्त अमीरी में।
उस दुनियाँ के कितने स्वामी, दोनों हाथों को खोल चले॥
जिस दौलत को जिस नारी को, दिल के अन्दर सहयोगी था।
ओ दौलत देखो पड़ी रही, रोती नारी को छोड़ चले॥
था बड़ा भरोसा बेटों का, भाई बन्धू परिवारों का।
पर चला नहीं कुछ भी चारा, उन सबको रोते छोड़ चले॥
जिस तन को गहनों कपड़ों से, नित रोज़ सजाया करते थे।
उस फैशन वाली सूरत को, हम राख बनाकर छोड़ चले॥
जब जाना ही कुछ साथ नहीं, तो दुनियाँ का पीछा छोड़ो।
जो बीत गई सो बीत गई, पर आगे से चेत चलो।
हम दासी भई आनन्द मग्न, फिर करते हरि का भजन चलो॥

भजन—८५

गुरु—कुछ न बनाया कुछ न बनाया कुछ न बनाया जी।
अगले भव के खातिर तुमने कुछ न बनाया जी॥

शिष्य—हड्डी कड्डी देखो मैंने देह बनाई है।
भूषण बसन इतर आदिक से खूब सजाई है।

गुरु—इसकी राख बनेगी यह तो कुछ न बनाया जी।।अगले०।।

शिष्य—कैसे-कैसे ऊँचे-ऊँचे महल बनाये हैं।
अजब ग़ज़ब के फ़रनीचर से खूब सजाये हैं।

गुरु—इन्हें त्याग होगा, यह तो कुछ न बनाया जी।।अगले०।।

शिष्य—बेशकीमती जौहर का भण्डार बनाया है।
चांदी सोने का भी घर में ढेर लगाया है।

गुरु—मालिक और बनेंगे,यह तो कुछ न बनाया जी।।अगले०।।

शिष्य—सारे पुर में देखो कैसी शान बनाई है।
प्रमुख जनों में इज्ज़त आलीशान बनाई है।

गुरु—जीतेजी के सब कुछ,यह तो कुछ न बनायाजी।।अगले०।।

शिष्य—बड़े-बड़े दुनियाँ के, चन्दन काम बनाये हैं।
मेधा के बल बड़े-बड़े, प्रोग्राम बनाये हैं।

गुरु—बीच में पड़े रहेंगे, यह तो कुछ न बनाया जी।।अगले०।।

भजन—८६

प्रेमी बहुतेरे प्रेम निभाने वाला कोई-कोई ।
हरि के दुवारे उत्ते, जाने वाला कोई-कोई ॥टेर॥
प्रेम-प्रेम कहन सौखा, प्रेम दा निभाना औखा ।
प्रेम वाली जोत को जलाने वाला कोई-कोई ॥१॥
कोई जावे जंगलों में, कोई जावे मन्दिरों में ।
मन के ताले को चाबी लगाने वाला कोई-कोई ॥२॥
इस नगरी के नौ दरवाजे, इनमें ही बजा रहे बाजे ।
दशवीं गली के बीच जाने वाला कोई-कोई ॥३॥
कोई जाके गंगा न्हावे, कोई भाजा जमना जावे ।
आतम सरोवर गोता लाने वाला कोई-कोई ॥४॥

* समाप्त *

—:o:—

* साधु और तोता *

कहते हैं करते नहीं, मुँह के बड़े लबार ।
तिनके मुँह काले होंयगे, साईं के दरबार ॥

आज संसार में जो कुछ कह रहे हैं वैसा कर नहीं रहे । पढ़ लिख कर केवल गा लेने में तोता-रटन ही है जब तक समझेंगे नहीं तब तक न तो संसारी दुःखों से छूट सकते हैं और न जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति पा सकते हैं ।

किसी जङ्गल में एक महात्मा रहते थे। एक दिन उनके आश्रम में शिकारी से छूटकर एक घायल तोता आया। महात्मा जी ने उसका इलाज कराया और अच्छा होने पर उसे पढ़ाया 'शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, फँसना नहीं' जब तोते ने पाठ याद् कर लिया तो महात्मा जी ने उससे कहा 'जा' इस उपदेश को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्र तथा सुखी विचर।' तोता एक पेड़ पर जा बैठा और उपदेश का पाठ करने लगा। उसके साथी तोते भी उसी प्रकार गाने लगे।

एक दिन महात्मा जी ने एक शिकारी को पाँच रुपये देकर कहा कि आज तुम जितने तोते पकड़ो वह यहां ले आना। वह प्रसन्न होकर चल दिया। जैसे ही उसने जाल लगाया कि तोते चिल्ला उठे—"शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, हम नहीं फँसेगें ३।" यह सुनकर शिकारी बहुत हैरान हुआ, जाल उठाकर महात्मा जी के पास गया और रुपये वापिस करके कहने लगा "महाराज! मेरी रोटी छिन गई, मेरे बाल बच्चे क्या खायेंगे—सारे तोते हमारी करतूत से भेदी हो गये हैं, अब कोई हमारे जाल में नहीं फँसेगा।" महात्मा जी ने सोचा कि इधर तो यह भूखा रहेगा और

उधर तोते भी केवल पाठ करने से मुक्त नहीं हो सकते। उन्होंने शिकारी से कहा "ठीक है, परन्तु एक बार जाल लगा के तो देखो, यदि फिर भी तोते न आवें तो मुझे बताना।"

शिकारी वापिस गया और तोतों की बातों पर कोई ध्यान न देते हुए जाल लगा कर दाना डाल दिया। दाने को देखते ही तोते एक दम उस पर टूट पड़े—पाठ करने में खूब मस्त थे। दाने पर बैठते ही सब जाल में फँस गये। शिकारी खुश होकर जाल को समेट महात्मा जी के पास चला। रास्ते के जाल में फँसे हुए तोतों का दम घुट रहा था, परन्तु पाठ जारी था। शिकारी ने तोतों को आश्रम पर लाकर रख दिया, वहां भी उनका पाठ चालू था।

महात्मा जी ने शिकारी को पाँच रुपये देकर विदा किया और तोतों की गुरु भक्ति पर हँसते हुए उस तोते को ढूंढ़ निकाला जिसको उन्होंने पढ़ाया था, और उससे पूछा कि तू यहां से क्या सीख कर गया था? तोता—"शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, हम नहीं फँसेगे ३" यही चार बातें आपने मुझे सिखाई थीं। अपने साथियों सहित मैं इनका आनन्द से पाठ किया करता हूँ। महात्मा जी (हँस कर)—अरे मूर्खानन्द! पाठ

भी करता जाता है और जाल में भी फँसता जाता है—दाने को जाल में पड़ा देख कर उसी पर जा बैठता है और फँसा हुआ भी पाठ को जारी रखता है। पाठ के अनुसार कर्म नहीं किया और अपने साथ अन्य तोतों को भी फँसाया। जा आगे ध्यान रखना—ठोकर खाकर सम्हलना चाहिये।

इस दृष्टान्त में निगुरे और सगुरे दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिए बड़ा हितकारी संकेत है। वैसे तो निगुरे सगुरे अधिकाँश मनुष्य तोता-रटन में ही आयु के दिन पूरे कर रहे हैं, फिर भी सगुरे लोग जिनको सत्य का ज्ञान प्राप्त है, भगवान को अधिक प्यारे होते हैं और ज्ञानियों में भी जो तन-मन-धन तथा मन-क्रम-वचन से गुरु-आज्ञा का पालन कर रहे हैं वे गुरुमुख तो गुरु का स्वरूप ही हैं—गुरु की दृष्टि में उनसे अधिक प्यारा और कोई नहीं होता। पूर्ण गुरु-भक्त होना बच्चों जैसा खेल नहीं है—धीरे धीरे सगुरा अपने ध्येय की ओर आकर्षित होता है। गुरु से ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् किसी सगुरे को कैसा होना चाहिये, इसी बात को समझने में काफ़ी समय लग जाता है। माया और ईश्वर के बीच में जकड़ा हुआ जीव कालरूपी दो पाटों की चक्की के बीच तोता-रटन में ही स्वाँस पूरे कर पिस जाता है। जब तक किसी सगुरे को इतना ही

ज्ञान है कि "उपदेश के बाद मैं सगुरा हूँ, अब मुझे ऐसे सत्य का ज्ञान हो गया है कि जिसके जानने के पश्चात् कुछ जानना शेष नहीं रहता, ऐसा अनोखा उपदेश मेरे पास होते हुए मैं झूट, कपट, चोरी-जारी इत्यादि सर्व प्रकार के विपरीत कर्मों को करने में स्वतन्त्र हूँ, सगुरे ज्ञानवान को विपरीत कर्मों का दोष नहीं लगेगा, स्वार्थ सिद्धि का मार्ग खुल गया है, अब मेरे जीवन के सारे भोग पूरे होंगे, इत्यादि" अर्थात् जब इस प्रकार की धारणाएँ जो केवल किसी निगुरे अज्ञानी मनुष्य में होंनी चाहियें उनमें ही सगुरा समाज भी अपने जीवन की सुख-शांति मानने लग जाता है तो इसी महान्-भ्रम रूप शत्रु के नष्ट होने तक उस सगुरे का जीवन भी तोता-रटन में ही लगा रहता है। यद्यपि सगुरा एक निगुरे की तुलना में बहुत ही श्रेष्ठ व्यक्ति समझा जाता है, परन्तु विपरीत कर्मों का अनुसरण करके मनमुखताई की ओर आकर्षित होने वाला वह (केवल एक नाम धारी सगुरा) भी सभी के लिये घृणा का पात्र हो जाता है। जिस प्रकार निगुरे का सगुरा बनना बहुत ही आवश्यक है उसी प्रकार सगुरे को भी गुरु की आज्ञा को समझ कर उसका पालन करना अति आवश्यक है। जो सगुरा तोतारटन से मुक्त होकर वास्तव में स्वयं को गुरु-भक्त देखने का इच्छुक है वह

नीचे लिखे कुछ नियमों को अपनाने का प्रयत्न करेः—

(१) आप अपने द्वारा कहे गये सत् वचनों को पहले स्वयं विचार करें। जो कुछ आप दूसरों से याचना करते हैं स्वयं भी वैसा ही करें।

(२) आप जिस योग्य भी हैं 'सत्संग, भजन तथा सेवा कार्य में बड़े चाव से तैयार रहें।' इसीसे सब सद्-गुण आप में धीरे २ प्रवेश करेंगे।

(३) अतिथि सेवा में संकोच न हों। जो मनुष्य अपने जैसे हर मनुष्य को तन-मन-धन से प्रेम करने का निश्चय करने लगता है, भगवान के दरबार में वही सच्चा प्रेमी है।

(४) डाक्टर वा वैद्य प्रातः भगवान् का स्मरण कर के दुकान पर बैठता है। वह ऐसा किस लिये करता है? इसलिये कि कोई रोगी आये। एक वकील भी माला फेरता है—केवल मुकद्दमे के लिये, पण्डित पोथी खोल कर बैठता है—किसी ग्रह पूछने वाले के लिये, एक सेठ धूपबत्ती जलाता है—अधिक धन की कामना को लेते हुए। इस प्रकार सवेरे से ही प्रभु से कुछ न कुछ माँगा करते हैं। एक सगुरे गुरु भक्त को भी प्रातः उठते ही अपने इष्टदेव से कुछ माँगना चाहिये। उसको

तो सब चीजों की कामना छोड़ कर केवल एक ही चीज प्रभु से माँगनी चाहिये—प्रभु कोई सत्संग का प्यासा मिले।

निगुरे लोगों की राम कहानी तो बड़ी अटपटी सी है। निगुरे और सगुरे में केवल अन्तर इतना ही है कि निगुरा कागज़ लेखी कहता है और सगुरा आंखों देखी। निगुरा पाठ करता है कि भगवान 'भर्गो' अर्थात् तेज स्वरूप है—प्रकाशमान् है, सगुरे को सद्गुरु द्वारा उस परम प्रकाश का ज्ञान होता है। निगुरा राम की भक्ति 'राम-राम या रामायण का पाठ करके राम की पाषाण मूर्ति के आगे घी की ज्योति बत्ती जलाने' में मानता है और सगुरा संत तुलसीदास जी के सिद्धान्तानुसार उस परम प्रकाश रूप प्रभु की सर्व व्यापक ज्योति के ध्यान में, जिसके लिये किसी दीपक घी या बत्ती की ज़रूरत नहीं है, उस ज्ञान को प्राप्त करने को 'राम भक्ति' मानता है। निगुरा देह, धन और विद्याभिमान को ही प्रभु का ज्ञान समझने लगता है तथा सगुरा सर्व प्रकार के अहङ्कार से बहुत दूर, इन्द्रिय-मन-बुद्धि से भी परे अति सूक्ष्म से सूक्ष्म जो आत्मा है, उसके बोध को 'आत्म ज्ञान' मानता है। निगुरा रोटी कपड़े, मकान आदि भौतिक पदार्थों की प्राप्ति में ही आत्म शान्ति मान लेता है और सगुरा केवल आत्म बोध में ही

सुख शान्ति की इच्छा करता है। निगुरा विना गुरु के ही आत्म उन्नति के स्वप्न देखा करता है किन्तु सगुरा किसी कर्म-योगी, तत्त्व-दर्शी आत्म-अनुभवी सन्त, महात्मा या आचार्य के शरण में गये विना उस प्रभु के साक्षात्कार को सम्भव नहीं मानता। निगुरा पोथी या झण्डे को ही गुरु मानकर उससे प्रेरणा प्राप्त करना चाहता है परन्तु 'शिष्य चेतन और गुरु जड़' ऐसे बेमेल सम्बन्ध में सगुरा सन्देह प्रकट करता है--गुरु का अध्यात्म ज्ञान चैतन्य शिष्य को सदा चैतन्य गुरु से ही होता है, यह धर्म युग की सनातन मर्यादा है। निगुरा अलग २ देशों, जातियों तथा सम्प्रदायों के धर्म भिन्न२ मानता है और सगुरा सब ही मनुष्यों के लिये 'प्रभु का साक्षात्कार' इस एक ही धर्म का पक्षपाती है। हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-ईसाई, जैनी-सनातनी, समाजी, निराकारी-साकारी आदि सब धर्मों में एक दूसरे के प्रति दोष-दृष्टि है, इसलिये इनमें से किसी को भी सच्चा धर्म नहीं कह सकते। प्रभु से प्रेम करने वालों का सदा एक ही धर्म होता है।

इसी प्रकार बहुत सी व्यर्थ धारणायें संसार के निगुरे अन्ध-विश्वासी लोगों में पायी जाती हैं। भगवान् को सब ही मानते हैं, परन्तु उस शक्ति को तत्त्व रूप से जानने की अपेक्षा तोता रटन में बहुत खुश हैं। इसी कारण संसार

का वातावरण अन्धकारमय दीख रहा है—शान्ति दूर जा रही है। तोतों की तरह कितने ही मत-मतान्तर, गीता, रामायण, अंजील (बाइबिल), कुरान, गुरु-ग्रन्थ-साहब और वेदों का पाठ भी करते जाते हैं और साथ ही साथ रोटी, कपड़ा, मकान, मान, प्रतिष्ठा रूपी दाने के लालच में अशान्ति रूपी जाल में भी फँसते जा रहे हैं। जाल से छुटकारा कैसे होगा ? 'पाठ करने से दुःख दूर होगा या पाठ के सार को समझ कर प्रभु-दर्शन से जाल कटेगा' इस रहस्य को हठ-धर्मी पक्षपाती लोग नहीं समझते हैं। तोता रटन को छोड़ सार बात को जान कर जब तक उस में नहीं लग जायेगा तब तक सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये सच्चाई को जानकर उसमें लगो और अपने जीवन को सफल बनाओ।

एक संत और शिष्य का सम्वाद (संक्षेप से)

—श्री १०८ स्वामी जी महाराज के मुखारविन्द से इन प्रश्नोत्तरों की कथा श्रवण करके जिज्ञासुओं के आग्रह से उनके लाभार्थ प्रकाशित—

(गुरु-शिष्य के सम्वाद से अर्थ सुखेन समझ में आ जाता है)

प्रश्न-चौपाई

देह अभिमान मिटावों कैसे। सत् आतमा पावों कैसे ॥
ऐसा सत उपदेश सुनावों। मन के सकल ताप मिटावो ॥

उत्तर-चौपाई

सत अरु असत विचारो निशिदिन। देह आतमा जानोभिन्न २॥
सत वस्तु से मन को जोरो। असत वस्तु की ममता छोरो॥
देह असत अमंगल जानो। आतम सत पवित्र पिछानो॥
तांते निशिदिन देह भुलावो। आतम देव निरन्तर ध्यावो॥
देह अभिमान सरप वत् मारो। काम-क्रोध-हंकार निवारो॥
सत आतमा ऐसे पावो। या विधि मन के ताप मिटावो॥

प्रश्न-चौपाई

भव सागर से तरन का, भगवन कौन उपाय।
जाके दृढ़ अभ्यास ते, भव दुःख सहज विलाय॥

उत्तर-चौपाई

संकल्प रूप संसार है, बल कर ताहि भुलाय।
शेष रहे जो अचल पद, ता में वृत्ति लगाय॥
जो जो चितवन चित करे, सो सो त्यागो मीत।
दृढ़ विचार वैराग को, छिन छिन धारो चीत॥
श्रवण मनन आदिकन से, दृढ़ ज्ञान जन होंय।
तांते होय असंगता, भव दुःख रहे न कोय॥

प्रश्न-चौपाई

कैसे भासे सत चित आतम। भूले जड़ दुःख रूप अनातम।
सर्व कल्पना भूले ऐसे। रवि निकसे तम नासे जैसे॥

उत्तर-चौपाई

धारो विवेक विचारो आतम । पुरुषारथ कर तजो अनातम ।
नाम वरण कुल आश्रम जेते । कलपित जान भुलावो तेते ॥
अहं देह कभी नहिं धारो । निराकार निज रूप सँभारो ।
मैं तू यह वह सकल भुलावो । शान्त रूप परमातम ध्यावो ॥
भानू ज्ञान उदय जब होई । सभी कलपना वह तब खोई ॥

प्रश्न-दोहा

सत्सँग की महिमा गुरो, कहो मोहि समुझाय ।
और कुसंगति से प्रभु, मो को लेहु बचाय ॥

उत्तर-चौपाई

शुभ करम जेतक हैं ताता । सब की है सत् संगत माता ।
सत् संगत है अद्भुत वेद । जामें खुले अविद्या भेद ॥
सत्संग जीव को ब्रह्म मिलावे । सागर लहर एक दिखलावे ।
मूरख संगत मूढ़ बनाया । विषय जाल के बीच फँसाया ॥
एक वस्तु नाना दिखलाई । भेद भाव कर वृत्ति भटकाई ।
मूरख संगति खून करावे । आपस माहि फूट को पावे ॥
तांते कुसंग त्यागो मीत । सत्सँग से नित करो प्रीत ॥

प्रश्न-चौपाई

भगवन मन कैसे शुद्ध होवे । नीच करम की मल को धोवे ।
भाखो ऐसा सत् उपदेश । नाशे जिससे सकल कलेश ॥

उत्तर–चौपाई

जैसे नित जल से तन धोवे। मन विचार से तिमि शुद्ध होवे।
अपने गुण औगुण वीचारो। नीच करम की मैल उतारो॥
धरम न जानो तन शुद्धता को। इससे नाश न कभी दुःख हो।
शुद्धता होवे शुभ करमन ते। सिमरन भजन और सत्सँग ते॥
आतम ज्ञान रिदे जब होंई। रहें क्लेश नहीं तब कोई।

प्रश्न–दोहा

या मन की मलिनता के, कारण क्या हैं तात।
किस युक्ति से हे प्रभो, यह निवृत्त होइ जात॥

उत्तर-सोरठा

लोभ मोह अरु मान, भूत भविष्यत चिंतवना।
काम क्रोध अज्ञान, मल के यही निमित्त हैं॥
इनको त्यागो मीत, चिन्ता तेरी दूर होय।
सतसंगति कर नीत, यह विकार चित्त के नसें॥

प्रश्न–चौपाई

मन चंचल होवे किस संग। किस विधि निश्चल होय असंग।
किरपा करके कहो उपाय। जिससे मन चंचल न दुखाय॥

उत्तर–चौपाई

विषयन संग और संबंधी। मन चंचलता की यह निधी॥
इनका संग तियागो जब ही। मन निश्चलता पावे तबही॥
सब वस्तुओं से करो वैराग। बंधुओं की सब प्रीति तियाग॥
ए साधन वैराग उपराम। मनहिं करें निश्चल निःकाम॥

प्रश्न—चौपाई

मन स्वभाव से अति चंचल । किस उपाय से होवे निश्चल ॥
शांति पाय होवे बिसराम । हर्ष शोक की मिटे सब खान ॥

उत्तर—चौपाई

ज्ञान बिना नहीं आन उपाइ । या मन की इस्थिति का भाइ ॥
आतम ब्रह्म ज्ञान होइ जब ही । मन चंचलता छोड़े तब ही ॥
मन स्वरूप है केवल फुरना । प्राणों कर फुरने का चलना ॥
प्राण गती जब तक है भाई । तब तक फुरना रहे सदाई ॥

प्रश्न—दोहा

मन तो चंचल सहित है, किस विधि इस्थित होई ।
सुगम उपाय बताइये, शान्ति प्रापत होइ ॥

उत्तर—चौपाई

मन को जानो संग अधीना । श्रेष्ठ करे शुद्ध नीच मलीना ।
धन की तृष्णा युवा अवस्था । उभय बढ़ावें मन चंचलता ॥
निज इच्छा बरतावा जोई । इससे भी मन चंचल होई ।
तांते श्रेष्ठ संगत नित राखो । शान्ति अमी रस प्यारे चाखो ॥

प्रश्न—दोहा

किस उपाय कर हे गुरु, मन की रखिआ होइ ।
किरपा कर उपदेशिये, सुगम युक्ति है जोइ ॥

उत्तर—चौपाई

विषय संग ते मन को होरो । निज फुरने से मन को मोरो ।
बहिर मुखियन का संग छोरो । संत स्वरूप में मन को जोरो ॥

इस विधि मन की रखिआ होइ। दीरघकाल करे जों कोई।
दृढ़ जब होइ विराग उपराम। इससे होवे मन सुखधाम॥

प्रश्न—चौपाई

करता हूँ उपासन भगवन। इस्थिर नहिं रहता है मो मन।
कहो कृपा करि सुगम उपाय। जिससे मन एकाग्रता पाय॥

उत्तर—चौपाई

करते रहो उपासना भाई। सहजे मन इस्थिर हो जाई।
जब उपासना से थक जाओ। सत्‌शास्त्रन में वृत्ति लगाओ॥
मन विचार से थकित निहारो। बैठ जाउ समता उर धारो।
देखो फिर इस मन की दौर। धावत है किस २ की ओर॥
जिस वस्तु को मन बहु चाहे। उसके दूषण तिसे सुनाए।
यह अभ्यास करते रहो भाई। शनैः शनैः मन शुद्ध हो जाई॥
मन पत्थर वत जड़ नहिं होगा। वासना खोइ शुद्ध ही होगा।
शरद ऋतू की नदी समान। मन प्रवाह निरमल तू जान॥

प्रश्न—दोहा

भगवन मन निरोध का, कहिये सुगम उपाय।
सहजे ही भव दुःख मिटे, प्रगटे शान्ति सुभाय॥

उत्तर—दोहा

मन निरोध का कहत हूँ, अति ही सुगम उपाय।
भूत भविष्यत त्याग कर, वर्तमान चित लाय॥
उत्तम देश एकान्त में, सिमरो नाम मुरारि।
शनैः शनैः अभ्यास कर, भूले सब संसार॥

प्रश्न-दोहा

कैसे मन शुद्धता लहे, त्यागे चंचल भाव।
आतम में इस्थिति ह्वै, प्रगटे स्वतः स्वभाव॥

उत्तर-दोहा

ज्यों कोयला बिन अग्नि के, तजे न श्याम स्वरूप।
त्यों मन आतम ज्ञान बिन, तजे न चंचल रूप॥
अग्नि बुझी कोयला भया, अग्नि मिले पुनि लाल।
त्यों मन ज्ञान प्रकाश ते, आतम तत्त्व सँभाल॥
आस मिटी चिन्ता गई, संशय गये बिलाय।
चंचल मन इस्थिर भयो, आतम रस को पाय॥

प्रश्न-दोहा

हे भगवन इस जगत के, दुःख निवृत्त किमि होई।
शान्ती सुख कैसे लहूँ, आशा तृष्णा खोई॥

उत्तर-दोहा

संग त्याग बिन जगत में, दुःख को अन्त न होई।
तांते गहो असंगता, दुःख क्लेश सब खोई॥
जो चाहे तू जगत में, शान्ति रहे नित मोहि।
तौ न काहु चित दीजिये, खेद मोह ते होहि॥

प्रश्न-दोहा

हे भगवन किस रीति ते, देह प्रीति हो नाश।
होवे किस विधि हृदय में, शुद्ध आतम परकाश॥

उत्तर-चौपाई

देह नाशी जड़ मिथ्या जान । पाँच तत्त्व से रचित पिछान ।
अतिहि मलीन अमंगल जान। दुःख अरु चिंता रोग की खान॥
यह शरीर विषयन का प्यारा । पाप पुण्य से करे खुआरा ।
तांते देह के दोष विचारो । देह की प्रीति न रहै पियारो ॥
दुहुँन का भेद विचारो जब । शुद्ध आत्मा तुम पावो तब ॥

प्रश्न-दोहा

किस युक्ति से हे प्रभो, आतम दरशन होहि ।
परतच्छ होवे आतमा, कीजें किरपा मोहि ॥

उत्तर-चौपाई

प्रापत रूप आतम सदा । अविद्या कर नहीं भासे कदा ।
जब विपर्यय बुद्धि होइ अनात्मा । भासे नहिं परतच्छ आत्मा ।
सारा दिन ज्यों रवि परकासे । बादल भीत ओट नहिं भासे ।
होइ मोतियाबिन्द जब आखे । सूर्य प्रकाश नहीं तब भासे ॥
जुगति सुखेन विवेक विचार । जिससे भासे आतम सार ।

प्रश्न-दोहा

आत्मा अरु परपंच में, भगवन क्या है भेद ।
कैसे भासे आतमा, पूरन अचल अभेद ॥

उत्तर-दोहा

मनोराज परपंच है, कलपित सहित विकार ।
मनोराज ज़ु असार है, आतम पद है सार ॥

मनोराज को त्यागकर, सेवो आतम रूप।
प्रगटे परमानन्द तब, निरभय अचल अनूप॥
जो जो कलना मन रचे, तजो सकल बल धार।
शेष रहे जो शान्ति पद, सो है आतम सार॥

प्रश्न–चौपाई

आतम अभ्यास किस विधि होहि। किरपा करके भाखो मोहि।
जिससे होवे सुदृढ़ गिआन। पावे जीवन पद निरवान॥

उत्तर–चौपाई

आत्म कथन और आतम चिंतन, आपस माहिं सहाई सज्जन।
जो वाणी में नित ही आवे। चित अकार उसका हो जावे॥
आन वारता कभी न करो। तत्त्व वारता नित ही उचरो।
इस विधि नासे सब संसार। चित हो जावे आत्माकार॥

प्रश्न–चौपाई

निरविकार शुद्ध जीव स्वरूप। अक्रिय सत चित अनन्द रूप।
निज को क्यों नहि करे प्रतीत। अशुद्ध विकारी दुःखकी भीत॥

उत्तर–चौपाई

देह इन्द्रिय अरु मन के संग। चढ़ा जीव पर उलटा रंग।
अपना वास्तव रूप विसारा। ज्ञान विपर्यय देह संग धारा॥
देह संग ते अशुद्ध पछाने। इन्द्रियन संग विकारी माने॥
प्राणन संग कहे मैं मरता। अन्तःकरण मिल दुखसुख भरता।
सत संगति मिल करे विचार। लेवे तब निज रूप निहार॥

प्रश्न-दोहा

अनुभव मात्र स्वरूप मम, कैसे निश्चय होय ।
साधन किरपा कीजिये, द्वैत भाव सब खोय ॥

उत्तर-दोहा

चिंतन करो स्वरूप का, दृढ़ होकर अभिआस ।
सत स्वरूप प्रगटे अमल, देह भाव होय नाश ॥
अनुभव तेरा आतमा, नित प्रापत है सोय ।
दृढ़ऽपरोच्छ जब तक नहीं, शान्ति न कबहूँ होय ॥

प्रश्न-दोहा

कैसे नाशे हृदय ते, नाम रूप संसार ।
कैसे प्रगटे आत्मा, सत चित आनन्द सार ।

उत्तर-दोहा

तेरा ही संकल्प है, नाम रूप संसार ।
जब तु मेंटे कलपना, शेष रहे पद सार ॥
तेरो रूप अगाध है, जा का पार न वार ।
जब भूले तू आप को, तब भासे संसार ॥

प्रश्न-दोहा

जगत जगत सब कहत हैं, ताका कवन स्वरूप ।
किस प्रकार नाशे जगत, भासे स्वतः स्वरूप ॥

उत्तर-दोहा

संसकार ते जग भयो, और जगत नहिं रंच ।
संसकार के चीण है, नाशे सब परपंच ॥

श्रोत्र सम्बन्धी वाक्य ते, संसकार होइ सिद्ध।
वाक्य बिना संसार कों, माने शास्त्र असिद्ध॥

प्रश्न–चौपाई

यह सागर संसार अपार। कौन जहाज़ उतारे पार॥
सत्गुरु मुझ पर किरपा करो। डूबत हों सहायता करो॥

उत्तर–चौपाई

संशय है सागर संसार। डूबे अज्ञानी मँझधार॥
निज स्वरूप का हों जब ज्ञाता। नहिं संसार दृष्टि तब आता॥
तांते निज स्वरूप का ज्ञान। भवसागर की नौका जान॥
अवर उपाय डुबावन हारे। संशय माहि फिरावन वारे॥

प्रश्न–दोहा

सुख दुःख का हेतु नहीं, ईश्वर सृष्टी तात।
जीव सृष्टि सुख दुःख का, कारण क्यों कहलात॥

उत्तर–दोहा

जीव रचित सृष्टी विषे, अहङ्गता ममता आहि।
अहं मम नष्ट हुआ जभी, सुख दुख सब मिट जाय॥

प्रश्न–चौपाई

जगत् माहिं सुख है वा नाहीं। यह संशय मेरे मन माहीं॥
किरपा करि मोहि उत्तर दीजे। यांते मेरा संशय छीजे॥

उत्तर–चौपाई

जगत् माहिं रंचक सुख नाहीं। सुख आतम विचार केमाहीं।
संत उपदेश देवे विचार। अन्यथा जगत में दुःख अपार॥

संत उपदेश करे उरधार । जगत चिंता कलेश भण्डार ।
संकल्प रूप सागर संसार । तासों संत लगावें पार ॥

प्रश्न-दोहा

परब्रह्म संसार में, केतिक है परिछेद ।
मेटो यह संदेह मम, लीन होइ भव खेद ॥

उत्तर-दोहा

मन निरोध परब्रह्म है, मन विक्षेप संसार ।
तांते केवल मनहि को, उभै स्वरूप विचार ॥
जो चाहे संसार को, चितवै नाना भाव ।
जो चाहे परम ब्रह्म को, गहे एकत्व स्वभाव ॥
भव दर्शन से होत है, राग द्वेष का क्षोभ ।
ब्रह्म दरशन शीतल महा, शीतल शान्त अक्षोभ ॥

प्रश्न-दोहा

वस्तु क्या परमात्मा, उसका कौन स्वरूप ।
है निवास उसका कहाँ, भाखो अनुभव रूप ॥

उत्तर-दोहा

परम सत्ता जो सरव में, पूरण शुद्ध स्वरूप ।
रंग रूप ते रहित है, सो परमातम रूप ॥
किसी विशेष स्थान में, उसका नहीं निवास ।
सरव ठौर पूरण अचल, अद्वय स्वतः प्रकाश ॥
वेद उक्त उसका हृदय लखो विशेष स्थान ।
सत चित् आनन्द विभू है, यह स्वरूप भगवान ॥

प्रश्न-दोहा

कहँ देखूं परमातमा, ऐसा दीजे ज्ञान ।
जाके बोध प्रकाश ते, दर्शन होइ भगवान ॥

उत्तर-दोहा

जहां तहाँ परमातमा, देखो पूरण रूप ।
देश काल वस्तु सरव, है परमात्म स्वरूप ॥
जग स्वरूप परमातमा, परमातमा जग रूप ।
देखों जैसे भाव से, भासे सोई रूप ॥

प्रश्न—चौपाई

परमेश्वर किमि देखा जावे । अथवा वह दृष्टी नहीं आवे ॥
क्या स्वरूप परमेश्वर भगवन । किरपा करके कीजे वरणन ॥

उत्तर-चौपाई

नेत्रों का दृष्टा परमेश्वर । उसको नेत्र लखें फिर क्यों कर ॥
नेत्र आप को आप न देखें । निज परकाशक कैसे पेखें ॥
परमेश्वर अद्विती है भाई । उसका द्रष्टा कौन बताई ॥
परमेश्वर है आपै आप । नेत्र दृश्य नहिं द्रष्टा थाप ॥

प्रश्न-दोहा

क्या स्वरूप है ज्ञान का, सत्गुरु दीन दयाल ।
किरपा करि वर्णन करो, तोड़ो सब जंजाल ॥

उत्तर-दोहा

जग परमात्मा आतमा, ज्ञान यथारथ जोई ।
यही स्वरूप गिआन का, राखो हिये पिरोइ ॥

प्रश्न—चौपाई

साधन रूप अवधि फल ज्ञान । इनका वर्णन करो सुजान ।
जिनको लख कर ज्ञान कमाऊँ । जिसते निश्चल पद को पाऊँ ॥

उत्तर-दोहा

मुख्य साधन है ज्ञान को, सत्गुरु का उपदेश ।
सत् शास्त्र चिंतवन द्वितीय, खोवे सकल कलेश ॥
ज्ञान स्वरूप विवेक है, नित अरु अनित विचार ।
दृढ़ हो कर तुम सिद्ध करो, मिटे सकल संसार ॥
सर्व दुःख जब दूर होइ, उपजै परमानन्द ।
यह फल जानो ज्ञान का, रहे न त्रिपुटी द्वन्द ॥
देहवत् भासे आतमा, यह है औधी ज्ञान ।
देह अध्यास मिटे सकल, भासे सत्ता समान ॥

प्रश्न-दोहा

परमात्मा किस कर्म कर, होवे अनुभव रूप ।
किस उपाय कर प्राप्त हो, सतचित आनन्द रूप ॥

उत्तर-दोहा

परिपक्वता हो प्रेम की, उदय होइ वैराग ।
होइ उपराम स्वभाव जब, दृढ़ होवे वैराग ॥
जब स्वभाव उपराम होइ, सत्गुरु नेह उपजात ।
सत्गुरु नेह ज्यों ज्यों बढ़े, तिमिर अज्ञान नसात ॥
ज्यों ज्यों नाश अज्ञान हो, होइ ज्ञान परकास ।
संशय भरम निवृत्त होय, उपजै सुख की रास ॥

प्रश्न-दोहा

शुद्ध स्वरूप में किमि भये, ईश अरु जीव अनेक।
कैसे नाशे भेद यह, भासे वस्तू एक॥

उत्तर-दोहा

सर्वज्ञता को धार कर, ईश्वर लीनों मान।
अल्पज्ञता कों धार कर, जीवत्व मन में ठान॥
सर्वज्ञता अल्पज्ञता, कल्पित माया रूप।
तांते ईश्वर जीव भी, कल्पित उभय स्वरूप॥
ऐसे वस्तु विवेक कर, त्यागो कल्पित भाव।
शुद्ध स्वच्छ निसचै गहो, प्रगटे स्वतः स्वभाव॥

प्रश्न-दोहा

किरपा करि वर्णन करो, उत्तम सुगम उपाय।
जाते प्रगटे आतमा, देहों अहं बिलाय॥

उत्तर-चौपाई

देह हाड़ मांस अरु चामा। जामें पूरण आतमा रामा।
राम रमैया घट घट वासी। रोम रोम में है परकासी॥

दोहा

रोम रोम में रम रहा, आतम राम अनंत।
घट मठ में मृत्तिका सकल, वस्तर में ज्यों तंत॥

चौपाई

गुरु बिन लखता किनें न पाई। ढूंढ्यो जल थल महि अल भाई।
देह माहिं परमातम रहै। गुरु बिन अकथ कथा को कहै॥

दोहा

गुरु तीरथ जब परसिये, उतरे सकल उपाधि ।
तन मन धन जब भेटिये, नाशे आधि विआधि ॥
जा साधन को साधते, साधक कष्ट सहाय ।
सत्गुरु पूरा भेटिये, क्षण में साधे जाय ॥
वचन अमोलक संत जन, सुनते ही दुःख जाय ।
ज्यों मिरतक मुख परे, सुधा बूंद दे जिवाय ॥
श्रद्धालू होइ कान धर, सुने सन्त के बैन ।
सुनते ही सूरज चढ़े, मिटे अविद्या रैन ॥
देह असतऽरु असार है, आतम सत अरु सार ।
सब साधन का मूल है, सत अरु असत विचार ॥
देह अमंगल रूप जड़, नाशी सहित विकार ।
आतम मंगल रूप नित, चेतन रहित विकार ॥
देह अशुद्ध मलीन है, उदय अस्त के सहित ।
आतम शुद्ध पवित्र है, उदय अस्त ते रहित ॥
देह में दुःख सुख भान है, आतम में नहिं कोय ।
देह को सदा परिणाम है, आतम इक रस जोय ॥
देह दुःख की खान है, आतम है सुख रूप ।
देह काल आधीन है, आतम अचल अनूप ॥
निज स्वरूप है आतमा, भूल न मानो देह ।
आतम सत् चैतन्य है, देह असत् जड़ खेह ॥

इस विचार को धार कर, त्यागो देहऽभिमान।
आतम अनुभव रूप को, अपना आप पिछान ॥
देहोऽहं के त्याग सम, और नहीं कोई दान।
शुद्ध आतमा में स्थिति, सब तीरथ असनान ॥
ऐसे और अनेक वच, संत कहत समझाय।
दया दृष्टि को धार कर, उपदेशत चित लाय ॥
इन को सुन कर दृढ़ करे, सत प्रतीत हृदय धार।
वाद विवाद त्याग कर, खोजे आतम सार ॥
बारम्बार विचार कर, मनन करे चित्तलाय।
मनन विषे जब होइ दृढ़, निदिध्यासन कहलाय ॥
निदिध्यासन दृढ़ होइ जब, निरविकल्प होइ चीत।
सत्ता जगत अरु देह की, रंच न भासे मीत ॥
तब प्रगटे सत् आतमा, परमानन्द स्वरूप।
केवल चेतन मात्र नित, अपना आप अनूप ॥
नाश होत संशय सकल, जनम मरण पुण्य पाप।
पूरण आत्म दृष्टि ते, मिटें शोक अरु ताप ॥
भवसागर के तरन का, उत्तम सुगम उपाय।
हेमराज वर्णन कियो, जो धारे सुख पाय ॥

प्रश्न—चौपाई

कैसे उपजे मन में शांती। नाशे मन की सकल भ्रांती।
अतिशय सुगम उपाय सुनावो। तपत हिये की बेग मिटावो।

उत्तर—चौपाई

जैसी शांति इच्छा त्यागे। ऐसी नहीं हिमालय भागे।
चन्दन लेप करे बहु भांति। तौं हूँ रंच न पावे शांति॥
शीत काल में इत उत जावे। मन की तपत न मूल मिटावे।
आशा तृष्णा जभी तियागो। तपत हिंये की तब ही भागी॥
यतन करो इच्छा को त्यागो। सहज मिले ता सों अनुरागो।
हेमा होय निराश विराजो। शांति रूप सुन्दर छवि छाजो॥

श्री गुरु रामदास जी महाराज का दो गृहस्थ जिज्ञासुओं द्वारा किये गये प्रश्न—जन्म मरण दुःखों की निवृत्ति का उपाय क्या है—का उत्तर।

॥ चौपाई ॥

श्रीगुरु रामदास करि करुणा, शुभ उपदेश तिन्हों प्रति वरणा।
अपनों जबै स्वरूप पिछानों, जनम मरण तब बंधन हानों॥
हाथ जोड़ सुन दुहुन बखाने, हम तौ इहु स्वरूप निज जाने।
जनमे होइ नंदन खत्रीन, खत्री हैं नर तन मन चीन॥
पूरब बालक भय को धरे, तरुण भये अब बहु बल भरे।
बिनु तन अपर कछू नहिं जानें, अपनों रूप यही हम मानें॥
तब श्री सत्गुरु वाक उचारा, मात पिता तें इहु तन धारा।
जातिऽरु नाम तिहों कलपाये, निज मत कहि व्यवहार बताये॥
तुम तों इस तन पूरब हूंते, करे करम फल तिस के लीते।
भला बुरा जिमि पूरब कीन, तिसते सुख दुःख भोगन कीन॥
इह तन तजि पुनि धारो और, करो कर्म भोग तिस ठौर।

तन उपजन ते होत अगेरे, तन विनसे पुनि रहो पिछेरे ॥
आदि अन्त तन के जन रहे, तन निज रूप कितों तुम लहे ।
तन कूरो सम वस्त्र पिख लेहु, जीरण भये अपर धरि लेहु ॥
ताँते तन पट पहिरे जोई, अपने स्वरूप जानिये सोई ।
कबहूं मरे न मार्‌यो जाइ, जल डोवे नहिं अग्नि जलाइ ॥
तन झूठौ सत रूप तुम्हारा, तन दुःखतुमहो अनन्द उदारा ।
तन जड़ है चेतन निज रूप, अस निसचय उर धरो अनूप ॥
सुनि दोनों कीन्हेस अरदास, किमि हमको अस रूप प्रकास ।
तन अहंता तजि तिस में धरें, सही स्वरूप आपनो करें ॥
तब साहिब ने कह्यो सुनाई, सत संगति कीजे चित्तलाई ।
कथा नियम ते सुनिये कान, गुरु शिष्यन सेवहु हित ठान ॥
करो विचारण सत्‌गुरु बानी, अरथ लखो करि प्रीति महानी ।
तिसके साथ हृदय निज तोलो, दुःख सुख विषे न कबहूँ डोलो ॥
तुम्हरी प्रीति जान नच कहे, इमि जो करो रूप निज लहे ।
इमि सत्‌गुरु कौ सुन उपदेश, करन लगे तिमि कार हमेश ॥
समय पाय होयो निज ज्ञान, कीन्हे करम बंध गण हान ।
गुरु शिष्यन की पदवी पाई, अन्त काल गुरु लीन मिलाई ॥

एक गृहस्थ शिष्य--भाई मल्लू का श्री गुरु अङ्गददेव जी के पास आकर कल्याण प्राप्ति के लिए प्रश्न तथा महाराज जी का उत्तर । ॥ चौपाई ॥

श्री गुरु मैं कारण कल्याण, आयौ सुनि तुम सुजस महान ॥
कीजे अब अपनों उपदेश, जिससे बिनसे सकल कलेश ॥

करत चाकरी मुग़लन केरी, करों जीविका तहां घनेरी ।
हलति पलति मुख ऊजल रहे, अस करनी को मम चित चहे ॥
सुनकर श्रद्धा पिखकर भारे, श्री अंगद गुरु वाक उचारे ।
भाई मल्लू हृदय विचारो, देह अनित्य सदा निरधारो ॥
सो तो मृतक जानि ही लीजै, इस हित चित नहिं संशय कीजै ।
आतम सदा साँच ही जानों, किसको मार्यो मरहि न मानों ॥
पावक दाह करत नहि तिसे, जल न डुबाय सकहि निज विषे ।
शस्त्रन ते नहिं छेद्यो जाय, जिसको पौन न सकहि डुलाय ॥
काल विनाशक सबनि विशाला, आतम अहै काल कोकाला ।
जग को लखि के सुपन समानै, वरण आश्रम क्रिया सुठानै ॥
ब्रह्मज्ञान को नित अभियासै, तनऽहंता लखि झूठ विनासै ।
इमि ही कृष्ण कीन्ह उपदेश, अरजुन धारयो हृदय विशेष ॥
वरण धरम सो करहु महाने, आतम साँच कूर तन जाने ।
दीजै दान सुकरम करीजै, तन विनसन नहिं संशय कीजै ॥
देश काल वस्तु मिल तीन, तब होइ काया प्राण विहीन ।
पूरण वय को समा सु आवै, जिस थल देह गिरे सो पावै ॥
तृतीया जिस ते होवन घात, व्याधि कै आयुधादि मिलिजात ।
इन तीनों बिन इकठे होय, प्राण हानि किमि नहिं किस जोय ॥
बिन त्रय मिले काल रखवारो, मरत नहीं नीके निरधारो ।
जेकर युद्ध आन कित परै, अल्प कि बहुते नाहीं विचरे ॥
पीठ न देइ सम्मुख रिपु रहे, निरभय शस्त्र बहे जस लहे ।
जग में प्रापत वृंद पदारथ, ले सत संगति लाय सकारथ ॥

जे रण महिं सम्मुख मृत्यु पावै, स्वर्ग निरसंशय सूर सिधावै ।
इमि द्वै लोकन उज्ज्वल आनन, करि कल्यानइव निज प्रानन ॥
मल्लू शाही सुन उपदेश, वरतन लाग्यो तथा हमेश ।
वंड खाय निज धरम विचारै, आतम तत सतासत धारै ॥

॥ १ ओंकार सद्‌गुरु प्रसाद ॥

१—समष्टि संसार उत्पत्ति का अध्यारोप द्वारा वर्णन

(वस्तु रूप ब्रह्म विषे अवस्तु रूप अज्ञान तत्कार्य का निरूपण करना, इसका नाम 'अध्यारोप' है—जैसे रज्जु विषे सर्पादि सीपी विषे रूपा आदि, भीत पर चित्र, कपड़े पर पुतलियां, बारूद का हाथी) ।

॥ ईश्वर का स्वरूप ॥

'माया में आभास अधिष्ठान और माया मिल,
ईश सर्वज्ञ जग हेतु पहचानिये ॥'

माया में सतोगुण अधिक और रजो तमो न्यून, इसको शुद्ध सतोगुण माया कहा है ।

॥ ईश्वर के स्वरूप पर दृष्टान्त ॥

जैसे सामान्य पूर्ण सूर्य प्रकाश, समुद्र जल और जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब, तीन वस्तुएं हैं । इसका नाम 'समुद्र जलाभास' है । इसमें 'सामान्य सूर्य प्रकाश' असङ्ग है । जलाभास विषे जल उपाधि के सङ्ग से हिलजुल आदिक

क्रियाएँ हैं। तैसे सामान्य चेतन पूर्ण अधिष्ठान ब्रह्म, शुद्ध सतोगुण-माया और माया विषे ब्रह्म का आभास, तीन वस्तु मिल कर 'ईश्वर' है। इसमें सामान्य चेतन ब्रह्म असङ्ग है। माया आभास विषे माया उपाधि के सङ्ग से सर्वज्ञता आदि धर्म तथा उत्पत्ति, पालन आदि हैं।

अथवा

जैसे आधार रूप वस्त्र है। उसके ऊपर मावा (कलफ) पैन्सिल से खींचे हुए पुतलियों के चित्र और उनमें रङ्ग भरा गया है। यद्यपि पुतलियाँ परस्पर लड़ती दिखाई देती हैं और उनका आधार रूप वस्त्र नहीं दिखाई देता, तो भी पुतलियों के धर्मों से असङ्ग आधार कहीं चला नहीं जाता—ज्यों का त्यों एक रस असङ्ग विद्यमान है। पुतलियां और उनके धर्म सब कल्पित हैं। तैसे वस्त्रवत् आधार 'सामान्य चेतन-ब्रह्म' है और कलफवत् त्रिगुणात्मक शुद्ध सतोगुण माया है, पैन्सिली लकीरों के चित्रों वत् शब्दादि के कार्य सूक्ष्म शरीर हैं; रङ्गवत् पाँच महा भूतों के कार्य स्थूल शरीर और नाम-रूप हैं। यद्यपि हमें स्थूल शरीर और नाम-रूप ही दिखाई देते हैं और तीनों समष्टि शरीरों का आधार 'सामान्य चेतन-ब्रह्म' नहीं दिखाई देता तो भी 'सामान्य चेतन-ब्रह्म' वस्त्रवत् ज्यों का त्यों एक रस असङ्ग विद्यमान है और समष्टि शरीर तथा उनके धर्म सब कल्पित हैं।

जीवों के कर्म परिपक्व होने पर ईश्वर को जगत् रचने की इच्छा

जीवन के पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाइये।
नभ, वायु, तेज, जल, भूमि भूत रचे तहाँ,
शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध गुण गाइये॥

श्रुतिः—एकोऽहं बहुस्याम्।

गुरु-प्रमाण—कीता पसाउ एको कवाउ।
तिसते होए लख दरीआउ॥ [पृ० ३]

पुनः—जब उदकरख करा करतारा।
प्रजा धरत तब देह अपारा॥

ऐसी ईश्वर की इच्छा रूप माया की तमोगुण व्यवस्था हुई:—

ईश्वर का कारण शरीर—अव्याकृत (माया)

समष्टि पर्दा पहला,		इसका अभिमानी
तीन गुण।	सतो, रजो, तमो।	'ईश्वर'
'म' कार।		अन्तर्यामी।

तीनों गुणों से पाँच 'सूक्ष्म भूत' उत्पन्न हुए:—

ईश्वर का सूक्ष्म शरीर—हिरण्य-गर्भ

समष्टि पर्दा दूसरा,		
पाँच सूक्ष्म भूत	शब्द, स्पर्श,	इसका
(गुण), तन्मात्रा,	रूप, रस,	अभिमानी
अपञ्चीकृत भूत	गन्ध।	सूत्रात्मा।
'उ' कार।		

इन पांच सूक्ष्म भूतों से पाँच 'महाभूत' उत्पन्न हुए:—

ईश्वर का स्थूल शरीर—वैराट्

समष्टि पर्दा तीसरा पाँच महाभूत, 'अ' कार।	आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी।	इसका अभिमानी 'वैश्वानर'।

आकाश विषे एक गुण—शब्द।

वायु विषे दो गुण—शब्द (आकाश का), स्पर्श अपना)।

अग्नि विषे तीन गुण—शब्द (आकाश का), स्पर्श (वायु का), रूप (अपना)।

जल विषे चार गुण—शब्द (आकाश का), स्पर्श (वायु का), रूप (अग्नि का), रस (अपना)।

पृथवी विषे पाँच गुण—शब्द (आकाश का), स्पर्श (वायु का), रूप (अग्नि का), रस (जल का), गन्ध (अपना)।

प्रमाण श्रुतिः श्लोक

अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते।
शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः॥

दोहा—

अध्यारोपऽपवाद कर, भाखत हैं बुधिवंत।
शिष्य बोध के हेतु सो, नित चित एक लहंत॥
जैसे बालक तुष्टि हित, पिता सो भाषत ताहि।
वह पस माता आवती, निज दृष्टि ते नाहि॥

जैसे भूषण अनिक में, कनक सराफ़ लखाहि।
भूषण नाम पुकारदा, गाहक दृष्टि माहिं॥
निष्प्रपंच शुद्ध ब्रह्मचिद, जा में द्वैत न तंत।
जगत निरूपण तासु में, अध्यारोप कहंत॥
निर्विषान जस शशे में, करे अरोप विषान।
निर्विकारचिद् ब्रह्म में, तैसे जगत पिछान॥
नहीं भयो त्रय काल में, जगत आतमा माहि।
शशे सींग नभ पुष्प सम, कह अपवाद सु ताहि॥
निष्प्रपंच सह जगत द्वै, रूप सो ब्रह्म पिछान।
चलन स्थिरता रूप द्वै, वायू जैसे मान॥

शंका—आपने जगत् की उत्पत्ति का कारण ईश्वर कहा, सो लोक विषे कारण दो भांति का है—उपादान और निमित्त। इसलिये दृष्टान्त सहित वर्णन करिये कि ईश्वर उपादान कारण है या निमित्त?

समाधान—दोहा

उपादान अरु निमित्त पुनि, कारण है विधि दोइ।
उपादान जिस रूप में, कारज इस्थित होइ॥
भिन्न होइ कारज रचे, कहत निमित्त सो ताहि।
कारज के रचने विषे, ज्ञान क्रिया है जाहि॥
कारण है दुइ भांति का, जैसे घट का जान।
उपादान मृतिका तिसे, कुलाल निमित्त पिछान॥

जग का कारण ब्रह्म सो, दुहूँ भाँति का होइ।
उपादान अरु निमित्त पुनि, भले पिछानो सोइ॥
उपादान जड़ है जहाँ, होवे भिन्न निमित्त।
होइ अभिन्न निमित्त तहँ, उपादान जहँ चित्त॥
ऊर्णनाभि जंतु जिमि, तंतु उपावे जोइ।
उपादान अरु निमित्त द्वै, आपे है ताहि सोइ॥
जग का कारण ब्रह्म त्यों, दुहूँ भाँति का जान।
उपादान अरु निमित्त पुनि, लीजे भले पिछान॥
जैसे सुपने के विषे, रूप अनेक दिखाई।
उपादान अरु निमित्त तिमि, चेतन एक लखाई॥
जैसे सुपने का जगत, जाग्रत तथा पिछान।
सुपना जाग्रत में नहीं, जाग्रत सुपने हान॥

शंका—उपादान कितने प्रकार है ?

समाधान-दोहा

उपादान त्रय भाँति का, एक विवर्त परिणाम।
आरंभक पुनि तीसरा, भिन्न भिन्न यह नाम॥
पूर्व रूप न त्याग कर, रूप जो इत्तर धार।
कारण सोई विवर्त है, नीके लेहु विचार॥
तजें न पूर्व रूप को, माटी कंचन दोइ।
इतरे घट भूषण उभै, कारज रूप सु होइ॥

कारण त्रिवें विवर्त है, ब्रह्म जगत को जान।
अस्ति भाति प्रिय रूप सो, अनुगत लेहु पिछान॥
पूर्व रूप त्याग के, रूप जो इत्तर धार।
कारण सों परिणाम है, नीके यों निरधार॥
जैसे पूर्व रूप को, दूध त्याग कराहि।
दही रूप को धार है, यह परिणाम लखाहि॥
तीन गुणों की साम जो, नाम ताहि परधान।
जग ता कौ परिणाम है, सांखी ऐसे मान॥
पराचीन गृह तोरि जिमि, ताकी माटी डार।
तासों रचे नवीन गृह, सो अरंभ निरधार॥
प्रलय शेष परमाणु जे, तिन को पुनः मिलाय।
भूत भौतिक सृष्टी रचे, कहत अरंभ न्याय॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ १ ओंकार सद्गुरु प्रसाद॥

२--समष्टि संसार उत्पत्ति पर दृष्टान्त

जैसे सूर्य प्रकाश के अन्दर पृथ्वी में अनेक बीज पड़े रहते हैं। समयानुसार सूर्य का तेज लगने से बीज फूटकर पहले अंकुर होता है, पुनः अंकुर से तीन पत्ते—आस पास के दो मोटे, बीच का सूक्ष्म; पुनः पत्तों से शाखा, शाखा से प्रशाखा, पुनः अनेक पत्ते, पुनः फूल, पुनः फल। यह

जितनी क्रियाएँ हुई हैं सो सब बीज की हुई हैं, सूर्य सत्ता देता हुआ अक्रिय असङ्ग है। सूर्य की सत्ता बिना न अंकुर हो सकता है न विस्तार और न ही आगे फूल फल लग सकते हैं।

दार्ष्टान्त—तैसे सूर्य की नाईं ब्रह्म, पृथ्वी की नाईं माया, बीज की नाईं जीवों के कर्मों के संसकार जो महा प्रलय विषे माया में लीन होकर रहते हैं। जैसे समयानुसार सूर्य का तेज लगने से बीज से अंकुर हुआ, तैसे जब जीवों के कर्म परिपक्व होकर फल देने को सन्मुख होते हैं तब ईश्वर को इच्छा होती है कि मैं एक से अनेक रूप हो जाऊँ और जीवों को कर्मों के फल—सुख-दुःख का साचात् हो और मोच प्राप्ति का प्रयत्न करें। ऐसी ईश्वर की इच्छा रूप माया अंकुर की नाईं है। जैसे अंकुर से तीन पत्ते तैसे तीन गुण—आस पास के मोटे पत्तों की नाईं रजो, तमो और बीच के सूक्ष्म पत्ते की नाईं सतो; पुनः जैसे पत्तों से शाखा तैसे तीन गुणों से पाँच सूक्ष्म भूत—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; पुनः जैसे शाखा से प्रशाखा तैसे सूक्ष्म भूतों से पाँच महाभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी; पुनः जैसे अनेक पत्ते तैसे अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय और सर्व सङ्घात; पुनः जैसे फूल तैसे शुभाशुभ कर्म; पुनः जैसे फल तैसे शुभ कर्मों का फल सुख और अशुभ कर्मों

का फल दुःख। जैसे सूर्य सत्ता देता हुआ अक्रिय असङ्ग है तैसे ब्रह्म–सर्व का आत्मा अक्रिय असङ्ग है। ब्रह्म चेतन की सत्ता पाकर ही उत्पत्ति आदि कारज होते हैं। प्रमाण:–

ओंकार सर्व प्रकाशी। आतम शुद्ध अक्रिय अविनाशी।
कारण करण अकर्ता कहिये। भानु प्रकाश जगत ज्यों लहीऐ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ १ ओंकार सद्‌गुरु प्रसाद॥

३–उत्पत्ति व्यष्टि पर्दा पहला–कारण देह

(ईश्वर ने अपनी कारण देह—त्रिगुणात्मक माया से ब्रह्माण्ड भर के जीवों के लिए कारण देहें उत्पन्न कीं)

जीव का स्वरूप

दो०–मलिन सतो अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान युत जीव सो, करत करम फल आस॥

रजो तमो अधिक सतो किञ्चित, **कारण देह–अज्ञान अँधेरा** इसका अभिमानी 'प्राज्ञ' नामा जीव, सुषुप्ति अवस्था, निवास हृदय में।

जीव के स्वरूप पर दृष्टान्त

जैसे पूर्ण सूर्य प्रकाश, पोखरी (छपड़ो) का गदला जल और उस जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब, तीन वस्तुएँ हैं। इसका नाम 'पोखर जलाभास' है। इसमें समान सूर्य प्रकाश असङ्ग है। जलाभास विषे, जल उपाधि के सङ्ग से, हिल-जुल आदिक क्रियाएँ हैं। तैसे सामान्य चेतन अधिष्ठान कूटस्थ, मलिन सतो-अविद्या और अविद्या विषे कूटस्थ का आभास, तीन वस्तुएँ मिल कर जीव है। इसमें समान चेतन कूटस्थ असङ्ग है। अविद्या आभास विषे अल्पज्ञता आदिक धर्म तथा जन्म-मरणादिक हैं—

दो०—मति वा व्यष्टि अज्ञान को, अधिष्ठान चैतन्य।
घटाकाश सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य॥
काम करम युत बुद्धि में, जो चेतन प्रतिबिम्ब।
जीव कहैं विद्वान तिहिं, जल नभ तुल्य सनिम्ब॥
बुद्धि माहिं आभास जो, पुण्य पाप फल भोग।
गमन आगमन सो करे, नहिं चेतन में जोग॥

प्रश्न—अहं न जानामि अहं किमस्मि। भाव—हे सद्गुरो! मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ?

उत्तर—हे प्यारे! जैसे दर्पण उल्टा होने से मुख नहीं दिखाई देता, जब दर्पण सीधा होता है तब मुख दिखाई देता है। तैसे चार प्रकार की उल्ट बुद्धि होने से तू अपने

आप को नहीं जानता। जब उल्टापन दूर होने से बुद्धि रूपी दर्पण सीधा (शुद्ध) होगा तब तू अपने आपको जानेगा। सो उल्ट बुद्धि चार प्रकार की है; सुनो—

(१) अनात्म में आत्म-बुद्धि—अनात्म देह को अपना आप जानना, अर्थात् 'मैं देह हूं' ऐसा निश्चय करना—दृष्टान्त रज्जु-सर्पवत्।

(२) अनित्य में नित्य-बुद्धि—अनित्य देह और देह सम्बन्धी स्त्री-पुत्रादिक पदार्थ तथा स्वर्गादिक विषय सुखों को नित्य जान कर उनकी प्राप्ति के लिये सकाम कर्म करने—दृष्टान्त नदी प्रवाह का।

चित राखो आखिर को मरना। नदी प्रवाह जगत को थिर ना॥
प्रमाण—इन्द्रपुरी महि सर पर मरणा। ब्रह्मपुरी निहचल नहीं रहना॥ शिवपुरी का होयगा काला। त्रैगुण माया बिनसि बिताला॥

(३) अशुचि में शुचि-बुद्धि—अपनी तथा पुत्रादिकों की अपवित्र और असुन्दर देह को पवित्र और सुन्दर मान कर आसक्ति करना—दृष्टान्त भङ्गी का दयालु पुरुष द्वारा प्राप्त सुन्दर रूमाल से ढक कर मैले की टोकरी ले जाना, रास्ते में तीन मित्रों का साथ लगना और जानने के लिये दुराग्रह करना; समझाने पर दो का लौट जाना तथा तीसरे का विष्टा से लथपथ होकर मानना।

प्रमाण—विष्ठा अस्ति रक्त परेटे चाम। तिस ऊपर ले राखिओ गुमान ॥ एक वस्तु बूझै तां होवैं पाक। बिन बूझै तू सदा नापाक ॥

(४) दुःख रूप में सुख-बुद्धि—दुःख रूप धन* आदि विषय सुख-बुद्धि—दृष्टान्त मजदूरों का व साखी छज्जू भक्त व मज़दूरों की (भक्त जी ने मज़दूरों को कहा कि बैठ कर के भजन करो और भोजन व मज़दूरी दोनों देंगे, परन्तु मज़दूरों ने कहा कि हमें टोकरी उठाकर केवल मज़दूरी लेना स्वीकार है परन्तु गूंगों के समान चुप बैठना स्वीकार नहीं)।

प्रमाण—पुत्र कलत्र लच्मी माया।
इन ते कहु कवने सुख पाया ॥

इस चार प्रकार की उल्ट-बुद्धि अर्थात् विपरीत निश्चय का नाम ही 'अविद्या' या 'अज्ञान' है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

---

*पत्नी, पुत्र, भूमि, पशु, दासी, दास, द्रव्य, गृह, अनाज, इतनी वस्तुओं का नाम 'धन' है, जो कि नाशवान् है ॥

॥ १ ओंकार सद्गुरु प्रसाद ॥

४–उत्पत्ति पर्दा दूसरा–सूक्ष्म देह

(ईश्वर ने अपनी सूक्ष्म देह-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से ब्रह्माण्ड भर के जीवों के लिये सूक्ष्म देहें उत्पन्न की)।

अन्तःकरण

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के साँझी सात्विकी अंश से चार प्रकार का अन्तःकरण उत्पन्न किया— (१) मन, (२) बुद्धि, (३) चित्त, (४) अहङ्कार;—

मन–स्वरूप=सङ्कल्प-विकल्प, देवता चन्द्रमा;बुद्धि–स्वरूप=निश्चय करना, देवता ब्रह्मा; चित्त–स्वरूप=भूत-भविष्यत्-वर्तमान का चिन्तन करना, देवता वासुदेव; अहङ्कार–स्वरूप='मैं मेरी' करना, देवता रुद्र।

शङ्का–अन्तःकरण एक है या चार ?

समाधान–एक ही अन्तःकरण के वृत्ति भेद से चार नाम हैं :—

दो०–अहंकार मन बुद्धि चित्त, एक कहत हैं चार।
एक कहत हैं मन बुद्धि, अन्तःकरण विचार ॥
जैसे ब्राह्मण एक के, नाम क्रिया ते दोय।
रोटी करे रसोइया, पढ़े सो पाठक होय ॥

अथवा

ऐसा ढूंढ़कर लाओ नर। पीर बवर्ची बहिश्ती खर ॥

प्राण

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के साँझी राजसी अंश से पाँच प्राण उत्पन्न किये—१–प्राण, २–उदान, ३–समान, ४–व्यान, ५–अपान—

प्राण का वास हृदय में; काम भूख-प्यास अन्दर बाहर जाना,

उदान का वास कण्ठ में, काम आहार नीचे धकेलना,

समान का वास नाभि में, काम आहार हज़म करना,

व्यान का वास सारे शरीर में, काम नाड़ियों को रस पहुँचाना,

अपान का वास पायु में, काम मल-मूत्र को बाहर ढकेलना।

शङ्का–प्राण वायु एक है या पाँच ?

सामाधान–एक ही वायु के स्थान भेद और क्रिया भेद से पाँच नाम कहे हैं—

दो०–जैसे अन्तःकरण के, चार भेद हैं साँच।
तैसे एकै पवन के, प्राण कहे हैं पाँच ॥

दस इन्द्रिय

अपने २ सूक्ष्म भूत के सात्विकी अंश से पाँच ज्ञानेन्द्रिय–श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण और अपने २ सूक्ष्म भूत के राजसी अंश से पाँच कर्मेन्द्रिय–वाक्, पाणि,

पाद, उपस्थ, पायु उत्पन्न किये—

(१) 'शब्द' गुण से सूक्ष्म देह विषे दो इन्द्रिय उत्पन्न किये—

ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, कर्मेन्द्रिय वाक्।
श्रोत्र का काम सुनना, देवता दिग्पाल॥
वाक् का काम बोलना, देवता अग्नि।

(२) 'स्पर्श' गुण से सूक्ष्म देहे विषे दो इन्द्रिय उत्पन्न किये—

ज्ञानेन्द्रिय त्वचा, कर्मेन्द्रिय पाणि।
त्वचा का काम सर्द-गर्म, नर्म-सख्त स्पर्श, देवता पवन;
पाणि का काम ग्रहण-त्याग, देवता इन्द्र।

(३) 'रूप' गुण से सूक्ष्म देह विषे दो इन्द्रिय उत्पन्न किये—

ज्ञानेन्द्रिय नेत्र, कर्मेन्द्रिय पाद।
नेत्र का काम देखना, देवता सूर्य;
पाद का काम चलना देवता उपेन्द्र।

(४) 'रस' गुण से सूक्ष्म देह विषे दो इन्द्रिय उत्पन्न किये—

ज्ञानेन्द्रिय रसना, कर्मेन्द्रिय उपस्थ।
रसना का काम, खट्टा मिट्ठा आदि रस परखना,

देवता वरुण,

उपस्थ का काम लैङ्गी:मैथुन, देवता प्रजापति।

(५) 'गन्ध' गुण से सूक्ष्म देह विषय दो इन्द्रिय उत्पन्न किये—

ज्ञानेन्द्रिय घ्राण, कर्मेन्द्रिय पायु।

घ्राण का काम सुगन्ध दुर्गन्ध लेना, देवता अश्विनी कुमार;

पायु का काम मल त्याग, देवता यम।

अन्तःकरण ४, प्राण ५, ज्ञानेन्द्रिय ५, कर्मेन्द्रिय ५, सूक्ष्म शरीर कुल १९ अंशों का है।

इसका अभिमानी 'तैजस' नामा जीव।

वासा कण्ठ में तथा स्वप्नावस्था॥

अब विचार कर कह कि इन में से तू कौन है?

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ १ ओंकार सद्गुरू प्रसाद॥

५—उत्पत्ति पर्दा तीसरा—स्थूल देह

पाँच महाभूतों के तमो अंश से पंचीकरण द्वारा ईश्वर ने समस्त ब्रह्माण्ड के जीवों के लिये स्थूल देहें उत्पन्न कीं। (तत्वों के परस्पर विरोधी होने के कारण ईश्वर ने इनका पञ्चीकरण करके विरोध दूर कर दिया ताकि शरीर में इकट्ठे रह सकें)।

पञ्चीकरण पर दृष्टान्त

जैसे पाँच मनुष्य एक साथ विदेश को चले। जब

दोपहर का समय हुआ तो किसी जलाशय के किनारे स्नानादि से निवृत्त होकर सब ने भोजन के लिए अपनी २ पोटली खोली। एक के पास आठ पूड़ी, दूसरे के पास आठ कचौड़ी, तीसरे के पास आठ जलेबी, चौथे के पास आठ लड्डू और पाँचवें के पास आठ मठरी थीं। सब ने अपने २ भोजन के दो बराबर भाग किये। एक २ भाग तो सब ने अपने २ पास रख लिया और शेष दूसरे भाग के चार बराबर भाग करके शेष चारों को दे दिये। अब प्रत्येक के पास एक अपना बड़ा भाग और चार अपने साथियों से प्राप्त किये हुए, इस प्रकार पाँच पाँच भाग हैं। सब मिल कर २५ हो गये। इस प्रकार परस्पर मित्रता हो गई। ऐसे ही आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का परस्पर पंचीकरण द्वारा विरोध दूर हुआ और सब एकत्र रहने के योग्य हुए। सो पञ्चीकरण इस प्रकार है—

(१) आकाश के पास—लोभ, काम, क्रोध, मोह, मत्सर। लोभ आकाश का अपना मुख्य भाग और काम वायु से, क्रोध अग्नि से, मोह जल से तथा मत्सर पृथ्वी से प्राप्त हुए।

(२) वायु के पास-धावन, पसरन, उच्छलन, चलन संकोच। धावन वायु का अपना मुख्य भाग और पसरन

आकाश से, उच्छलन अग्नि से, चलन जल से तथा संकोच पृथ्वी से प्राप्त हुए।

(३) अग्नि के पास—क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति, आलस्य। क्षुधा अग्नि का अपना मुख्य भाग और तृषा वायु से, निद्रा आकाश से, कान्ति जल से तथा आलस्य पृथ्वी से प्राप्त हुए।

(४) जल के पास—रेत, पित्त, प्रस्वेद, लाज, रक्त। रेत जल का अपना मुख्य भाग और पित्त अग्नि से, प्रस्वेद वायु से, लार आकाश से तथा रक्त पृथ्वी से प्राप्त हुए।

(५) पृथ्वी के पास—अस्थि, मांस, नाड़ी, त्वचा, रोम। अस्थि पृथ्वी का अपना मुख्य भाग और मांस जल से, नाड़ी अग्नि से, त्वचा वायु से तथा रोम आकाश से प्राप्त हुए।

इस प्रकार कुल २५ प्रकृतियों की स्थूल देह है। इसका अभिमानी 'विश्व' नामा जीव, वासा दाहिने नेत्र में। जाग्रत अवस्था।

अब विचार कर कह कि इन में से तू कौन है?

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

❀ ॐ ❀
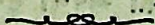
उपासकों के लिये ध्यान अभ्यास

पहिले खुला अभ्यास । चलते फिरते आप सहित सर्व मनुष्यों में, पशुओं में, पक्षियों में, वृक्षों में, कीटों में, बूटियों में, खेतियों में, हर एक योनि के जीवों में और तालावों में, नदियों में, पहाड़ों में, ज़मीन के ज़र्रे २ में तात्पर्य यह ऐसी भावना भक्ति करो कि जो नाम तथा रूप संसार में देखो सब में एक नारायण-भावना ही दृढ़ करो दूसरा कुछ न जानना । यदि दूसरा जानोगे तो तुम्हारे दुःख भय दूर कदापि न होवेंगे । यदि एक नारा-यण-भावना दृढ़ करोगे तो तुम्हारे दुःख भय की जड़ भी न रहेगी; ध्रुव भक्तवत् नारायण को मिलोगे ।

दोय दोय लोचन पेखां, हौं हरि बिन अवर न देखां ।

अभ्यास बैठ कर रात्रि को एकाग्र चित्त से सायंकाल को डेढ़ घन्टा, प्रातकाल को दो घन्टे ।

जैसे बालक का ध्यान डोर गुड्डी में रहता है तैसे मन का ध्यान एकाग्र होकर नारायण मूर्ति में ही रक्खो ।

❀ संक्षेप से चार साधन ❀

विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, मोक्षइच्छा ।

१–विवेक–विचार करना कि संसार में सत् वस्तु क्या है और असत् क्या है ।

२–वैराग्य–जिन २ पदार्थों को असत् निश्चय किया है उनसे प्रीति हटानी ।

३–षट्सम्पत्ति–शम, दम, श्रद्धा, समाधानता, उपरामता, तितिक्षा । (शम) मन को कामादि विकारों से तथा दलीलों से रोक रखना । (दम) इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से रोख रखना । (श्रद्धा) गुरु तथा शास्त्र के वाक्य सत्य जान कर धारण करने । (समाधानता) प्रीति के साथ मन लगाकर गुरु-शास्त्र के वाक्य सुनने (उपरामता) विषयों कों दुःख रूप समझ कर बेगारी की तरह काम करना । (तितिक्षा) सत्संग तथा भजन के वास्ते सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, वाक्य-कुवाक्य सहन करने ।

४–मोक्ष इच्छा–जन्म मरण के दुःखों से छूटने की इच्छा तथा परमानन्द प्राप्ति की इच्छा करनी—जैसे कैदी की दो इच्छाएँ होती हैं—एक कैद से छूटने की और दूसरी घर के आराम की इच्छा ।

दोहा—मल विक्षेप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान ।
ह्वै चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान ॥

श्री १०८ स्वामी भगवानसिंह जी महाराज की आज्ञा से छपा ।

भाग्य बड़ो मैं सतगुरु पायो,
मन की दुविधा दूर नसाई ॥टेर॥

बाहर ढूँढ फिरा मैं जिनको,
सो वस्तु घट भीतर पाई ॥१॥

सकल जून जीवन के माहीं,
पूरण ब्रह्म जोत दरसाई ॥२॥

जन्म जन्म के बंधन काटे,
चौरासी लख त्रास मिटाई ॥३॥

ब्रह्मानन्द चरण बलिहारी,
गुरु महिमा हरि से अधिकाई ॥४॥

मुद्रकः—श्री नारायण प्रेस, हृषीकेश, जि० देहरादून।